ज्ञानदीप लावू जगी

पुणे नगर वाचन मंदिर

स्थापना : ७ फेब्रुवारी १८४८

email : pnvm1848@gmail.com

www.punenagarvachan.org

पुस्तकाचे नाव : कल्पना-कानन १

लेखक : ब्रिजलाल बियाणी

प्रकाशक : हिन्द प्रकाशन, अकोला

प्रकाशन वर्ष : १९४६

मूळ ग्रंथ प्रत : शिक्षण प्रसारक मंडळी, पुणे

पुणे नगर वाचन मंदिर

अंकेक्षण (डिजीटायझेशन) प्रकल्प

अंकेक्षण रूपांतर - २०२१

कल्पना-कानन

853
Biy
3484

ब्रिजलाल बियाणी

D.V.POTDAR LIBRARY
S P COLLEGE
D00936

कल्पना-कानन

१

ब्रिजलाल बियाणी

'हिन्द' प्रकाशन
अकोला (बरार)

प्रकाशक : राजस्थान प्रिंटिंग प्रेस, अकोला.

प्रथम संस्करण दिसंबर १९४६

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

मूल्य दो रुपया

ह/८39

मुद्रक : दि सेंट्रल इंडिया प्रिंटिंग अँड लिथो वर्क्स्,
सीताबल्डी, नागपूर.

कहाँ क्या ?

❀ निवेदन ....

❀ यह क्यों ? ....

१ नर्तकी १

२ नाचती ज्योति ९

३ पर्वस्नान १३

४ लता २१

५ दीप पंक्ति २५

६ निष्फल पुष्प ३५

७ भीषण वन ४१

८ जन्माष्टमी ४७

९ टांगेवाला ५३

१० मृगतृष्णा ५७

११ जुगनू ६१

१२ आम्रवृक्ष ७१

१३ जन्मदिन ७५

निवेदन !

अगणित आशाओं और अनेक जबाबदारियों को लेकर 'हिन्द प्रकाशन' साहित्यिक क्षेत्र में उतर रहा है। एक ओर जहाँ समय का तक़ाज़ा हमें यह साहस करने को प्रेरित कर रहा है, दूसरी ओर प्रकाशन क्षेत्र की विविध कठिनाइयाँ और अपना प्रथम प्रयास हिचक भी पैदा कर रहे हैं। पर मनोत्साह उत्तम मुहूर्त है।

नव-प्रकाशन संबंधी कानूनी दिक़्तें भी थी ही। पर राजस्थान प्रिंटिंग प्रेस, अकोला ने उन्हें हल कर दिया। हमारा यह प्रथम-पुष्प उक्त प्रेस द्वारा ही प्रकाशित हो रहा है अतः हम संचालकों के अत्यंत आभारी हैं। राजस्थान प्रेस की इस उदारता के बिना हमारा यह मनोरथ पूर्ण न हो पाता।

अपनी प्रथम भेंट लिये साहित्य–सदन में हमारा यह प्रवेश, हर्षोल्लास एवं विस्मय-संकोच से अछूता नहीं। नवागंतुक के ये भाव स्वाभाविक ही हैं।

'कल्पना-कानन' श्री बियाणीजी की रचना है; हिन्द प्रकाशन' की अपनी ही चीज है अतः इस संबंध में क्या कहा जाय ? पर इतना अवश्य कि प्रथम भेंट के अनुरूप किसी अन्य वस्तु के अभाव में उनकी इस कृति को सर्वथा उपयुक्त समझ हम इसे अपने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं। यह वन्य-कुसुम है या उपवन-वाटिका का मूर्त सौरभ, यह विशेषणाभिषेक 'हिन्द प्रकाशन' का अधिकार नहीं, पाठकों की साहित्यिक अभिरुचि का है ! हम मौन हैं !

स्वागत की थोथी अपेक्षा भी हमें नहीं क्योंकि वस्तु अपनी और प्रयास स्वप्रेरित है। हाँ, स्वीकृति का सौजन्य अवश्य वांछनीय है, और वह मिलेगा यह विश्वास है। और समालोचन तो प्रकाशन का सौभाग्य है अतः सादर प्रार्थनीय है !

धन्यवाद की औपचारिकता का लक्ष्य किस ओर हो यह समस्या ही है। पर अपनी इस संकल्प सिध्दि का श्रेय राजस्थान प्रेस, अकोला के मैनेजर श्री शिवलालजी अग्रवाल एवं संचालक सेंट्रल इंडिया प्रिंटिंग ॲण्ड लिथो वर्क्स लि. नागपुरको न देना अनुचित होगा ! समय एवं साधनों के सर्वथा अभाव के बीच भी जिस तत्परता से उन्होंने सहयोग दिया है वह स्तुत्य है। यद्यपि अपनापन हमें यहां भी रोकता है। निस्संदेह उनकी सहानुभूति सहायता एवं स्फूर्ति के अभाव में अपनी यह प्रथम भेट हम अपने पाठकों की सेवा में प्रस्तुत न कर पाते !

राजस्थान भवन,
अकोला
४ १२-४

गोविन्द व्यास
व्यवस्थापक
हिन्द प्रकाशन

यह क्यों ?

स्वतंत्रता जीवन है और साथ ही जीवन का भार भी ! अपनी स्वतंत्रता प्राप्ति और अपने जीवन का उत्तरदायित्व-भार ग्रहण करने की अभिलाषा से भारतीय जनता ने १९४२ के देशव्यापी संग्राम में निमज्जन किया ! इस आन्दोलन में मेरा अपना तीन वर्ष का लम्बा बंदीवास ! जेल में भी एकान्त निवास की इच्छा ! युवावस्था से लेखन का आकर्षण और अभिरुचि—इन्होंने कलम के सहारे के लिये प्रेरित किया ! आत्मसंतोष के लिये लेखन हुआ। जिन कतिपय मित्रों ने लेखन का अवलोकन किया उनका प्रकाशन के लिये आग्रह रहा ! आत्मसंतोष के लिये लेखन और मित्रों के आग्रह से प्रकाशन !

जेल जीवन बन्धन है ! बन्धन में रुकावट है तो साथ ही शक्ति संग्रह की क्षमता भी ! बाह्य जगत की अलिप्तता के कारण शरीर और बुध्दि की प्रतिदिन की क्रियायें और प्रवृतियाँ वहाँ सीमित और कुंठित हो जाती है, पर कल्पना का साम्राज्य खुल जाता है ! अल्पना ! कल्पना कवि की कामधेनु, तत्वज्ञानी की तरणी, मौलिकता की माता, नवीनता

के नयन, प्रगति के प्राण, आविष्कारों की जननी, विश्व-दर्शन की खुर्दबीन और जीवन का ज़ायका है ! बुध्दिको पंख लगते हैं तब कल्पना बन जाती है !

पृथ्वी पर यदि विविधता, विशालता, अव्यवस्था और सौन्दर्यका एक साथ अवलोकन करना हो तो कानन में भटकना होगा। नानाविध वृक्ष-लता, कुछ जंगली पुष्प-फल, कांटे, घास, पत्ते, झरने, रास्तों का अभाव, रक्षक का अदर्शन—यह बन का दृष्य स्वरूप है। वहाँ सौन्दर्य से मस्त फूलों का मकरंद नहीं, सुस्वादु मीठे फल नहीं, कोमल लताओं के कुंज नहीं और न मानव निर्मित उद्यान की व्यवस्था और लावण्य ही ! तथापि कानन में है अस्तित्व, स्थायीत्व और थके के लिये पर्याप्त छाया !

मेरा कानन कल्पना का कानन है ! इसका अस्तित्व चंचला कल्पना में है। आजतक मैं अनेक बार कल्पना सृष्टि में रहा, कानन में भी भटका पर इस जेल-जीवन में कल्पना-कानन में विहार करने का अवसर मिला। परिणाम-स्वरूप आज उस कानन की कतिपय कुसुम कलियाँ लेकर अपनी उबरती उम्र में, कम्पित-करों से हिन्दी साहित्य-सरिता में अपनी श्रध्दांजलि अर्पण कर रहा हूँ ! मालूम नहीं मेरे इन सुमनों का मकरंद सरिता को सुरभित एवं सुशोभित करेगा या नहीं; पर मुझे तो अपनी पूजा का समाधान है !

अकोला-बरार
४-१२-४६

ब्रिजलाल बियाणी

माता पिता

की

स्मृति में

अभ्यासिका
दाखल अंक 3484
ग्रंथांक 853/Bi7
किंमत तारीख 5-2-

१

नर्तकी

विश्व ! विश्व कला का परिणाम है। कला के अभाव में प्रलय है, निश्चलता है। कला के आरंभ में विश्व निर्माण का श्री गणेश है। कला की संपूर्णता ईश्वरत्व है। अतः कला में ही जीवन है, प्रेम है और सौंदर्य है। कला और कलाकार अभिन्न हैं, साथ ही, भिन्न भी हैं। भिन्नता में

कलाकार की अपेक्षा कला ही विशेष है। चित्रकार की अपेक्षा चित्र महत्व का है। शिल्पकार से उसकी निर्मित मूर्ति अधिक सुन्दर है। ग्रंथकार की अपेक्षा उसकी रचना सृष्टि अधिक आकर्षक है। गायक की तुलना में गायन में अधिक माधुर्य है। कलाहीन जीवन व्यर्थ और निस्सार है।

मेरे छोटे से नगर के नागरिकों के भाग्य से वहां एक प्रसिद्ध नर्तकी का आगमन हुआ! आगमन के पूर्व से विज्ञापन था। कला प्रेमियों के दिलों में उत्साह स्वाभाविक। एक विशाल थिएटर में नृत्य का आयोजन होनेवाला था। निश्चित दिन से पूर्व ही टिकिटें बिकने लगीं।

मुझे कला से प्रेम है। जीवन में उसका महान् आकर्षण है। पर अभागे भारत में आज कला की अवनति है; कला को हीन निगाह से देखा जाता है। सौंदर्य मानसिक आस्वाद की वस्तु की अपेक्षा, भोगका साधन बन गया है, और भोग लालसा ने कला को हीन बना दिया है। कला की हीनता के साथ कलाकार की हीनता स्वाभाविक। कला के अभाव में कलाकार के सच्चे दर्शन और उसका आदर असंभव। संसार को असार माननेवाले कला में सार कैसे देखें? कला की हीनता की घोषणा करनेवाले कलाकार के प्रेम की घोषणा भले ही करते रहें पर उन्हें न कला का आनंद मिलेगा और न कला का दर्शन। इस प्रकार के सामाजिक वातावरण में नृत्य अवलोकन के लिये जाऊं या नहीं, यह द्वंद्व मेरे चित्त में चलता रहा। नृत्य निकृष्ट माना जाता है। यदि जाऊंगा तो समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों की निगाह में उचित नहीं दिखाई देगा। मेरे 'अल्प से नेतृत्व' पर भी जरा असर होगा। स्वार्थवश कला के त्याग की ओर दिल झुकता था; पर साथ ही निर्भय मन कहता था कि अपने जीवन के आनंद के लिये दुनिया का भय क्यों! अपने सच्चे स्वरूप में

ही जीवन सार है। फिर संसार उसे किसी भी रूप में देखे। नर्तकी कहां दुनिया की परवाह करती है ? वह अपनी कला में मस्त है, और सारी दुनिया उसे देखने के लिये लालायित है। फिर भय के कारण कोई देखे या न देखे। मन ने निश्चय किया नृत्य देखना ही चाहिये। टिकिट के लिये आदमी भेजा। टिकिट समाप्त हो गये थे। नृत्य देखने की इच्छा पर आघात हुआ। पर न जाने से प्रतिष्ठा पर आघात न होगा, इस भावना से टिकिट की प्राप्ति के अभाव में मैंने सुख दुख दोनों का अनुभव किया। जीवन द्वंद्व हमारी कृति का फल तो है ही।

नृत्य की निशा का दिन उदय हुआ। सायंकाल मित्रों ने चलने की बात कही। मेरा टिकिट खरीद लिया गया है, यह भी सूचना दी। भूखे को भोजन मिला और मित्र आग्रहार्थ उसका आस्वाद लेने की मैंने सम्मति दे दी। मैंने अपने दोष से मुक्ति पाई और मन को मित्रों की ओर उंगली उठाने का सहारा मिल गया। परावलंबन हमारे जीवन में कितनी सूक्ष्मता से भरा है, इसका मुझे भान तक न रहा।

समय के कुछ पूर्व ही मित्रों के साथ थिएटर पहुंचा। प्रथम पंक्ति में उत्तम स्थान की रक्षा कर ली गई थी। मित्र सेना एक पंक्ति में विराजित हुई। प्रथम पंक्ति का आसन अभिमान के भाव क्यों न पैदा करता ! सन्मान में जीवन का भान है। सामने देखा। बाजू में निहारा और गर्दन घुमाकर पीछे भी अवलोकन किया। थियेटर अमावट भरा था।

नृत्यारंभ का नियोजित समय निकट आने लगा। घड़ीवाले बार बार घड़ी देखने लगे। उत्सुकता बढ़ने लगी। एक एक क्षण भारी होने लगा। घड़ी की गति भारी मालूम होने लगी कारण मन की

गति की तुलना में विश्व की गति धीमी थी। परदे की ओर निगाह और तीसरी घंटी के श्रवणार्थ कान लगे हैं। दर्शकों में चंचलता है। सीटी की आवाज है। ताली की ध्वनि है, और कहीं तो पुकार का नाद भी है। मानसिक उत्सुकता और उसका बाह्य प्रदर्शन संपूर्णता को पहुंचे प्रतीत हुए। मैंने चारों ओर देखा, अपने मन को निहारा और इस उत्सुकता में भी कला का अनुभव पाया।

तीसरी घंटी हुई। परदा पृथ्वी त्याग आकाश की ओर घूमता चला गया। मंच, शून्य दिखाई दिया। नर्तकी नहीं। थिएटर में संपूर्ण शांति। नर्तकी धीमी चाल से एक ओर से आई। सब की निगाह उस पर पड़ी। नयनों के द्वारा दर्शकों का सारा मनोवेग बरसने लगा। नर्तकी मंच के मध्य में खडी हो गई सस्मित वन्दे किया। पल भर में उसने दर्शकों का अवलोकन किया। सारे दर्शकों ने नर्तकी को निहारा। नर्तकी खडी है। अचल है। जड़ है।

नर्तकी विशेष सुंदर नहीं है। शरीर का बंध खूब प्रमाणबद्ध नहीं है। गोल मुख, ठिंगना शरीर, ऊंचाई के प्रमाण में मुटाई कुछ अधिक। पोशाक भी मामूली। नर्तकी के शरीर सौंदर्य ने दर्शकों को अपेक्षित प्रसन्नता नहीं दी। कुछ निराशा का भाव भी झलके बिना न रहा।

नर्तकी को पहले देखा नहीं था। नाम ही सुना था। नृत्य का विज्ञापन ही जाना था। नृत्य ख्याति ने दिल में अलौकिक सौंदर्य की मूर्ति पैदा कर रक्खी थी। काल्पनिक चित्र से जब व्यवहारिक चित्र का मिलान हुआ तो निराशा स्वाभाविक। मित्रों ने नर्तकी देख, एक दूसरे की ओर देखा। मेरे दिल में विचार आगये। "नृत्य की बड़ी तारीफ थी पर नर्तकी सौंदर्य की प्रतिमा नहीं। कलाकार को देखा, अब कला को

देखना है। कला और कलाकार में अन्तर रहता ही है। रविवर्मा के चित्रों का सौंदर्य रविवर्मा में कहाँ ! फिर मैं इस नर्तकी में सौंदर्य को क्यों खोजूं ? मैं नृत्य देखने आया हूं न कि नर्तकी।"

पल भर मे शांति भंग हुई। सुंदर, शांत संगीतरस की तुषार वर्षा होने लगी। नर्तकी की जड़ता चल हुई। उसने बायें पैर से मंच को ठुकराया। हाथ हिला, उँगलियाँ हिलीं, सीधा पैर उठा। शरीर हिलने लगा। गति बढ़ने लगी। नर्तकी के शरीर का हर हिस्सा गतिमय होगया। ज्यों ज्यों गति बढने लगी नृत्यका स्वरूप प्रगट रूप धारण करने लगा। नृत्य की प्रकटता में नर्तकी अदृश्य होने लगी।

दर्शकों की शांति बढने लगी। नृत्यकला के स्वरूपने उन्हें आकर्षित करना आरंभ किया। नर्तकी को भूल, वे नृत्य को ही देखने लगे। नृत्य अपनी गति की संपूर्णता को पहुंच गया। नर्तकी नृत्य में लुप्त हो गई। न उसका चेहरा स्पष्ट दिखाई देता है, न हाथ, न पैर और न उसकी पोशाक। सब अस्थिर, चंचल है। चंचलता में अपने स्थायी रूप को खो दिया है। अब केवल नृत्य रह गया है। नर्तकी नृत्य में विलीन हो गई। नृत्य, नर्तकी एक जीव हो गये। मालूम नहीं नर्तकी स्वयं को भूली या नहीं, पर दर्शक अपने आपको भूल गये। नृत्य की मनोहर कला ने सबके चित्तको आकर्षित कर लिया। सबने अवर्णनीय आनन्द का अनुभव किया। हृदय आनंद को समा नहीं सका। वह बाहर फूट पड़ा। नयनों में आ गया। आनंदमय तालियों में और अभिनंदनमय ध्वनियों में बरस गया। मेरे मन में यही इच्छा रही कि इस गति में कोई रुकावट नहो, कोई विराम न हो। यह परम गति सतत् चलती रहे !

नृत्य का चढाव उतरने लगा। गति मन्द होने लगी। नर्तकी दिखाई देने लगी। गति की सम्पूर्ण समाप्ति। नृत्य का अन्त। जड़वत् नर्तकी मंच के मध्य फिर खड़ी। वन्दन किया। दर्शकों की तालियोंने स्वागत किया। नृत्य के पूर्व की अपेक्षा नृत्य के पश्चात् की नर्तकी अधिक सुंदर दिखाई दे गई। नृत्य के सौंदर्य से उत्पन्न भावनाओंने नर्तकी के रूपमें भी किंचित परिवर्तन किया। नृत्य की गतिकी थकावट से किंचित म्लान मुख भी लावण्य की ज्योति फैलाता दिखाई दिया। आकृति पर कृति का कितना असर, कितना अनजान प्रभाव पडता है, इसका मैं अनुभव कर सका। परदा गिरा। नर्तकी विश्राम और दूसरे नृत्य की तैय्यारी में लगी दर्शको में चर्चा चली। दूसरे नृत्य की उत्सुकता से प्रतीक्षा होने लगी।

प्रतीक्षाकाल में मेरे विचार नृत्य करने लगे। नर्तकी और नृत्य! नृत्य की सम्पूर्ण कला में, परम गति में, नर्तकी का लोप, उसकी अदृश्यता। नृत्य के लोप में, अन्त में, नर्तकी के दर्शन। विश्व–नृत्य और विश्व की आदिशक्ति नर्तकी की ओर विचार झुक गये। आदि शक्ति का नृत्य भी कितना सुंदर है! कितना कला पूर्ण! यदि इस विश्व-नृत्य को देखना चाहूं तो नर्तकी को देख नहीं सकता। यदि नर्तकी को देखना चाहूं तो नृत्य का अन्त है। गतिमान नर्तकी नृत्य है और गतिहीन नृत्य नर्तकी! नृत्य में, नर्तकी और गति दोनों हैं। विश्व नृत्यमें नर्तकी के अनुसार आदि शक्ति का स्वरूप नाचता है। मैं उस नृत्य की एक गतिमान रेखा हूं। यदि नृत्य का अन्त होगा तो मेरा भी अन्त हो जायगा। तब, मैं देख सकता हूं तो विश्व नृत्य, न कि नर्तकी। फिर नर्तकी को देखकर करूंगा भी क्या? संभवतः नर्तकी में वह सौंदर्य न हो जो नृत्य में है। नर्तकी की निश्चलता में गति मिलती है तब कला और आनन्द का आस्वाद मिलता है। विश्व नृत्य अवलोकन में ही

विश्वानन्द है। यही मानवी जीवन का सार और कार्य है। नृत्य के पीछे जो नर्तकी है, उसे नृत्य की गति की हर रेखा में देखते रहूं और नृत्य का आनन्द लूटते रहूं। नृत्य में नर्तकी का अनुमान है पर नर्तकी में नृत्य अदृश्य है। दृश्य नृत्य और अनुमानित नर्तकी—यही विश्व दर्शन है।

घंटी बजी। परदा उठा। नर्तकी आई। विचार अवलोकन में परिणित हो गया। नृत्य का आरंभ हुआ। कल्पना जगत से व्यवहार जगत में आगया। नव नृत्य का आनन्द लेने लगा।

आकर्षण में प्रेरणा शक्ति है। प्रेरणा अनुकरण को चालना देती है। मेरे दिल में आगया, "मैं भी गतिमान हो सकता हूं। तब मैं नृत्य क्यों न करूं? मेरा जीवन भी इतना आकर्षक और सुंदर क्यों न हो जाय?" विचारों ने ही उत्तर दे दिया। "तुझमें गति है; पर उस गति में नृत्य-कला के गुण और व्यवस्था कहां?" व्यवस्थित-गुणमय गति ही कला है। उसीमें आकर्षण शक्ति है। अपना जीवन यदि आकर्षक बनाना है तो उसमें गुणयुक्त व्यवस्थित-गति को लाना होगा; तभी जीवन नृत्य होगा। नृत्यने मानसिक आनन्द दिया और जीवन नृत्य का पाठ भी पढाया। विचार और अवलोकन इन दोनों के बीच झूलता हुआ मैं नृत्य देखते रह गया।

वेलोर जेल
१-९-४३

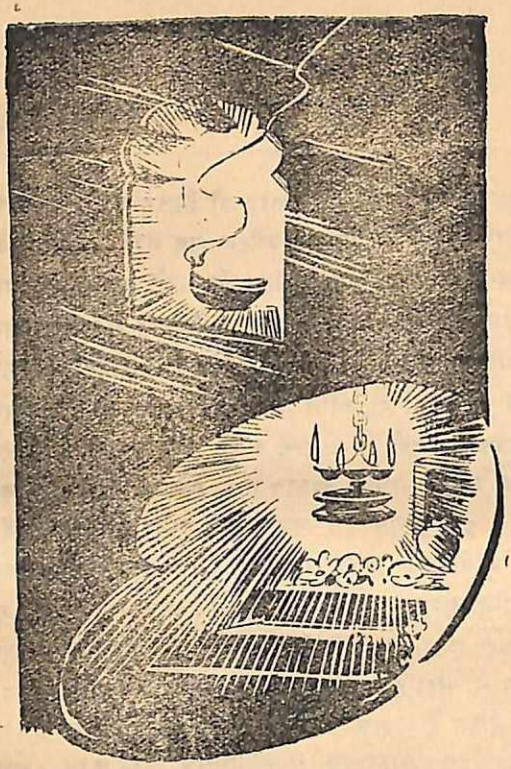

२

नाचती ज्योति

कार्तिक मास की अमावस्या का दिन। प्रकाश की याचना करने के लिये चंद्र, सूर्य के अत्यंत समीप पहुंच गया। दीपावली का त्यौहार। महालक्ष्मी और सरस्वती की आराधना का, पूजा का महोत्सव। आज रात्रि में पूजा के उपलक्ष में होनेवाले पानसुपारी के अनेक निमंत्रण मुझे मिले हैं।

मानवी मिलन में आनंद है। फिर आज तो मिलन के निमंत्रण की वर्षा है! भोजनोपरांत, रात्रि में मिलन, पर्यटन यह मेरा दीपावली का कार्यक्रम है। विविध-भांति रचित असंख्य दीप शिखाओं का अंधकारमय रात्रि में प्रकाश! प्राचीन मृतिका दीप, लालटेन, बिजली सब की रोशनी है। पर मृतिका दीपों की विशेषता है। हर दूकान में सजावट है, सफाई है, वाद्य है, फटाकों का फूटना है, नवीन बहियाँ हैं, पूजा है, आराधना है। पंडितों को अवकाश नहीं है। उन्हें अपने जीवन-महत्व का कुछ भान है। हर जगह कितना प्रेमसे स्वागत है! कितना हर्षयुक्त मिलन है! पान सुपारी है। इत्र गुलाब है। कहीं कहीं पुष्प मालाएँ भी हैं। हरेक के चेहरे पर आनंद की झलक है। गत वर्ष खोया हुआ व्यापारी भी भविष्य की प्राप्ति-आशा में प्रसन्न है। मानव-श्रोत सड़कों से बह रहा है। जिधर उधर हँस रहा है। मिल रहा है। सारा वातावरण प्रकाशित है। जीवन से भरा है। प्रेम से परिपूर्ण है। आशा से आल्हादित है। माधुर्य से मंडित है। शत्रु के लिये भी दिल में द्वेष का क्षणभर के लिये अभाव है। इस ममतामय मिलन-माधुर्य को लूटते, सारी हवा में आनंद का श्वास लेते, मन में विचार आगया "यह दीपावली का आनंद-उत्सव हर दिन क्यों नहीं? यह प्रेम-प्रवाह सतत क्यों नहीं?" उच्छवास के साथ मनने ही उत्तर दे दिया "प्रति दिनकी दीपावली में वार्षिक दीपावली के आनंद का अन्त हो जायगा। अभाव में ही प्राप्ति की प्रसन्नता है। क्षुधा में ही अन्न का स्वाद है। अन्धकार में ही दीपज्योति का सौंदर्य है। नीरवता में ही संगीतका माधुर्य है। क्या इसी कारण नित्य की अपेक्षा अनित्यही मानवको अधिक आकर्षित करता है?"

मिलता गया। चलता गया। आनन्द लेता रहा। और विचार मग्न भी बना रहा। निशा के मध्यतक यह कार्य कर मैं शहर के बाहर अल्प

उद्यान के मध्य में स्थित अपनी कुटिया को पहुँचा। शरीर पर थकावट थी, पर मन प्रसन्न था। निद्रा का शरीर में प्रवेश होने लग गया था, और वह अपना प्रगट रूप धारण करने के लिये लालायित थी।

फाटक से प्रवेश कर, सकरी सड़क से चल, मैं अपनी कुटिया के बरामदे में पहुँच गया। भारतीय संस्कृति में पले नौकर ने भी मेरी कुटियापर दीपोत्सव मनाया था। बरामदे के मध्य के आले में एक दीप जल रहा था। स्नेह से भरा था। ज्योति में सम्पूर्ण प्रकाश था। हवा के झोके आते थे। झोके के साथ आत्म रक्षार्थ ज्योति रुख पलटती थी। हवामें नाचती थी। उसके नृत्य के साथ मेरी छाया नाचती थी। खंभों की छाया चल थी। सारा वातावरण नृत्यमय दिखाई देता था। अन्धकार और प्रकाश दौड़ता था, कूदता था और क्रीड़ा करता था। "इस जड़ ज्योति का भी जीवन के लिये कितना प्रयत्न है! हवाके झोकोंसे आत्मरक्षण की कितनी कुशलता है! संकटों के सामने जीवन का कितना मनोहर नृत्य है! उसका नृत्य है और उसके चारों ओर के वातावरण का क्रीड़ामय जीवन है!

नाचती ज्योति की यह लीला देखता, चप्पल दरवाजे में रख, टोपी हाथ में ले, शयन की तैय्यारी करते हुये मैंने कमरे में पैर रखा। वहाँ भी आले में एक दीप जीवन ज्योति जगा रहा है। उसमें भी स्नेह भरा है। ज्योति में सम्पूर्ण प्रकाश है। वायु के झोकों के अभावमें ज्योति निश्चल है। शांत है। ज्योति में जीवन है, प्रकाश है, पर जीवन क्रीडा नहीं है। कमरे में प्रकाश है पर बरामदे की छाया की उछल-कूद नहीं है। अंधकार प्रकाश का मल्ल-युद्ध नहीं है, झंझा से झपट नहीं है; अंत का भय नहीं है तो साथ ही जीवन का नृत्य सौंदर्य भी नहीं है।

वायुके झोकोंसे झूमती, बरामदे की नाचती दीप-ज्योति और वायु के झोकों से अलिप्त, कमरे की शांत ज्योति ने मेरे सामने मानव जीवन के कर्मयोगी और कर्महीन संन्यासी को खड़ा कर दिया। नाचती ज्योति में संसार से जूझते कर्मयोगी के कार्यों की सुंदर क्रीड़ा मुझे दिखाई दी। तो शांत ज्योति में संसार से हटकर शांत, निश्चल जीवन व्यतीत करते व्यक्ति का मैं दर्शन कर सका। विचार आया.... "कौनसा जीवन श्रेष्ठ है ? संकटों से जूझते नाचता, अपने चारों ओर के वातावरण को नचाता या संकटों से अलिप्त हो शांत जीवन बिताता ? संकट हीन शांति में सौंदर्य नहीं। सौंदर्य के अभाव में सच्चा जीवन नहीं। नृत्य के अभाव में मृत्यु का आनंद नहीं। नाचती ज्योति में प्रकाश है, क्रीड़ा है, मरण की अभयता है, पौरुष और पराक्रम का प्रदर्शन है, अतः नाचती-ज्योति ही मेरे जीवन का आकर्षण है।

विचार मग्न अवस्था में खटिया का सहारा लिया और निद्रा के झूले में झूलने लगा।

वेल्लोर जेल
२२-९-४३

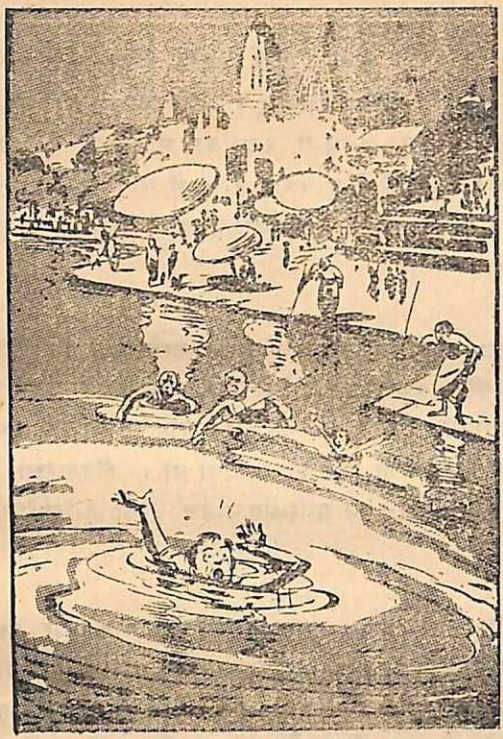

३

पर्वस्नान

पर्व का दिन। प्रातःकाल का समय। पवित्र सरोवर का स्थान। भक्तों द्वारा निर्मित सुंदर विशाल घाट। स्नानार्थ स्त्री पुरुषों का जमघट। ईश्वर और मनुष्यों के बीच दलाली कर, आजीविका चलानेवाले अर्ध-नग्न पंडों की भीड़। स्नान करनेवालों का भक्ति जप। पंडों का मंत्र

उच्चारण। दान का देना और लेना। गीले कपड़ों सहित कुछ भक्तों का मंदिर की ओर जाना। तालाव में स्नान। मंदिर में दर्शन। स्नान, दान और दर्शन, इस त्रिवेणी संगम में ईश्वर का सान्निध्य है, पाप-क्षालन है; यह सत्व व्यवहार में किस प्रकार अमल में लाया जा रहा था, इसका मैं अवलोकन कर रहा था। अवलोकन और चिंतन में ईश्वर प्राप्ति का मेरा अपना मार्ग था।

तालाव के घाट पर ही सारे स्नानार्थी स्नान करते थे। हर पंडे के हाथ में एक लकड़ी थी। वह बीच बीच में उसे जलपर पीट देता था कारण सरोवर में मगर थे। उनके भय के कारण घाट के समीपही स्नान था और उन से रक्षा के लिये ही यष्टि का आघात था। जीवन-रक्षा का मानवी-प्रयत्न और जीवन-यापन का मगर-प्रयत्न इन दोनों के संघर्ष का यह परिणाम था।

संघर्ष में सान्निध्य आगया। मगर ने एक भक्त का पैर पकड़ अचानक उसे पानी में खींच लिया। घाटपर भयानक हलचल मच गई। भक्तगण पवित्र जल त्याग किनारे भागने लगे। कपड़ों का भी पूरा होश नही रहा। पंडे भी जान लेकर दौड़े। कुछ ढीठ थे वे वहीं ठहर कर पानीपर लगुड़ प्रहार करने लगे। मगर दूर जाने लगा। भक्त का तड़फना! प्रयत्न करना! पर मगर-मिट्टी से भक्त की मुक्ति करने की शक्ति किसमें? पंडे पाप से मुक्त कर सकते हैं पर मगर से नहीं। चारों तरफ खेद और दया की लहर बह गई। मुंह बंद होगये। कान बहरे प्रतीत होने लगे। जीवन का सारा रस आंखों में उतर कर ग्राह-गालमें गये भक्त की ओर देखने लगा। मैं अपनी हालत का वर्णन किस प्रकार करूं! तैरना जानता था। दौड़कर पानी में कूदने के लिये

भावना ने धक्का दिया। पर विवेकने तीक्ष्ण ब्रेक लगाया। "प्रयत्न विफल होगा। जीवनको व्यर्थ जोखिम में डालना होगा। मगर से मुक्ति असंभव है!" असहायता का संपूर्ण स्वरूप जीवन में प्रथमवार मुझे दिखाई दिया!

कौन ऐसा हिन्दू होगा जिसे इस अवसर पर गजेन्द्र मोक्ष की कथा का स्मरण न आता? कौन होगा जिसके मुंह पर "गज और ग्राह लड़त जल भीतर", यह पंक्ति न आई होती। मैं उक्त पंक्ति को असहाय अवस्था में गुनगुनाने लगा। किसी पंडे ने पुकार कर कह ही डाला, "गजेन्द्र मोक्ष की कथा याद करो। ईश्वर का धावा करो।"

डूबते भक्तने ईश्वर का स्मरण अवश्य किया होगा। हमने, सैकडों हृदयोंने हृदय के अंतिम-तल से ईश्वर को पुकारा, ग्राहसे मुक्ति की याचना की, पर ईश्वर के कानों तक हमारी आवाज नहीं पहुंची। गजेन्द्र की पुकार सुन कर दौड़नेवाला ईश्वर हमारे आर्तनाद की उपेक्षा कर गया। भक्त, मगर का कलेवा होगया। मगर-जीवन रक्षार्थ भक्त-जीवन समाप्त होगया। हमारे देखते देखते पलों में सारी घटना घटित हो गई। तालाव वैसाही बना रहा। सारी घटना का जल पर क्या असर हुआ, कौन जाने? जलनिधि ने भक्त के साथ सहानुभूति प्रगट की या मगर के साथ हमदर्दी दिखाई, इसका निर्णय कौन करे? पर मानवों की सहानुभूति भक्त के साथ थी, यह निस्संदेह है। मेरे समीप खडे एक परम भक्त के मुंहसे दीनवाणी में अनायास निकल गया 'पर्व के दिन सदेह मुक्ति मिल गई।"

इन शब्दों ने मेरे होश को जगाया। मेरे मुंह से भी निकल गया, 'फिर अनुकरण न किया जाय?' भक्त ने आंखे घुमाकर देखा। निश्शब्द

रह गया। चारों ओर अब आवाज फूटने लगी। अचलता भंग हुई। गति का संचार हुआ। भयभीत वातावरण में ही पर्व क्रियाएं पुनः आरंभ होने लगी। सुख दुख की क्षणिकता का अनुभव आया। मेरे समीपही परिचित दसपांच व्यक्ति आगये। गजेंद्र मोक्ष की कथा की सर्व साधारण चर्चा सुन मैंने कहा, 'आपने गजेन्द्र मोक्ष की कथा सुनी है पर 'ग्राह-ईश संवाद' को आपने पढ़ा नहीं।' एकने कहा, 'आप सुना दीजिये।' मैं तो बिना दक्षिणा का पुराण-पाठी ठहरा, कथा सुनाना आरंभ कर दिया।

"ग्राह के मुख से ईश्वरने जब गजेन्द्र की रक्षा कर ली तब जिस जिस प्राणी को ग्राह अपनी क्षुधा निवारणार्थ या आत्मरक्षार्थ पकड़ता वही ईश पुकार करता। भक्त का बन्दी भगवान भाग कर उसकी रक्षा कर देता। इसका परिणाम यह हुआ कि ग्राह भूखों मरने लगा। जीवों के अलावा और क्या खाता? क्षुधा व्याकुल मगर ने भारतीय प्राचीनता के सर्वश्रेष्ठ दलाल और दुखियों के मित्र नारद ऋषि की शरण ली। नारदजी ग्राह को साथ ले विष्णु भगवान के निवासस्थान पर पहुंचे। भगवान लक्ष्मी के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। नारदजी को देख भगवान ने उनका सस्मित स्वागत किया और आगमन का कारण पूछा। नारदमुनि ने क्षुधा व्याकुल निर्बल ग्राह की ओर भगवान का ध्यान आकर्षित किया। भगवान की प्रार्थना प्रारंभ की। "हे देवाधिदेव! सृष्टि के कर्ता, भर्ता और हर्ता! आपने अपनी विधिबद्ध दयामयी सृष्टि में इस गरीब ग्राह को पैदा किया। इसका जीवन, जीवन पर ही आपने निर्भर रक्खा। जिसे यह पकड़ता है, आप मुक्त कर देते हैं। परिणाम स्वरूप, चींटी को भी चुगा देने की व्यवस्थामयी आपकी सृष्टि में यह ग्राह एक सप्ताह से निराहार है! आज आपके दरबार में न्याय

मांगने आया है। या तो इसके उदर-भरण का कोई नवीन रास्ता आप निर्माण करें या आपका जो वर्तमान निर्माण है उसके अनुसार इसे जीने दें। आज सागर की अल्प मछली भी इससे बलवान होगई है। ग्राह आपसे कुछ नहीं चाहता। यह आपकी खास कृपा की याचना करने नहीं आया है। वह चाहता है केवल आपके द्वारा निर्मित नियमों का निबाहना। उसने आपका कोई अपराध नहीं किया है। प्रत्युत अपराध किया है गजेन्द्र तथा अन्य जीवों ने, जिन्होंने भक्ति से आपको भुलावा देकर सृष्टि क्रम का व्यतिक्रम करवाया है तथा आपके ओर लक्ष्मी के सहवास में बाधा डाली है। यदि कोई दंडनीय होगा तो वे हैं, न कि ग्राह। पर आज उल्टा न्याय है। आज ग्राहको सजा होरही है और अपराधी आराम कर रहे हैं। हे देवाधिदेव! आपके जगत में न्याय की रक्षा हो, नियमों का पालन हो।" इतना कह नारद-वाणी ने विराम पाया और नारदजी ने भगवान को सविनय प्रणाम किया। ग्राह ने दंडवत् किया। दोनों विष्णु भगवान के आलोकित आनन का अवलोकन करने लगे।

भगवान ने सस्मित कहा, "नारदजी! तथास्तु! भविष्य में हम किसी नियम के व्यतिक्रम का अवलंबन नहीं करेंगे। हरएक को सृष्टि नियम के अनुसार अपनी जीवन-रक्षा और जीवन-निर्वाह का संपूर्ण अबाधित अधिकार होगा।"

नारदजीने भगवान का जय जयकार किया।

मैंने कहा, 'मित्रो! इसी कथा के कारण आज सैकड़ों हृदयों की याचना भगवान को अपने आसन से हिला न सकी। वे वचनबध्द हैं। नियम से नियमित हैं। हमने पुराना-पुराण पढ़ा पर यह नवीन कथा नहीं पढ़ी। इसी कारण अज्ञान में याचना करते रहे।'

यह ग्राह-पुराण सुनकर कुछ मित्र हँस पड़े, कुछ अबोल विदा हो गये पर विचार करते गये। एक ने व्यंग से कह दिया, 'आप रास्ते चलते पौराणिक बन गये।' सब जाने लगे। मैं भी घर की ओर चला। विचार सागर लहराने लगा।

गजेन्द्र मोक्ष, द्रौपदी की चीर-वृध्दि, सूर्य का धर्मराज को भोजन-थाल अर्पण, दुर्वासा तथा उनके शिष्यों का स्नान के साथ उदर भरण, तन्दुलों के अर्पण के साथ सुदामा के प्रासाद का निर्माण आदि अनेक घटनायें, सारे चमत्कार, मेरे सामने आगये। क्या भगवान ने गजेन्द्र को ग्राह से मुक्त किया था? द्रौपदी का चीर सचमुच बढता ही गया था? यदि ये सारी घटनायें सत्य हैं तो ये सारे चमत्कार प्राचीनता में ही क्यों छिपे हैं? आज क्यों नहीं होते? आज ईश्वर की महिमा कम होगई या भक्ति की शक्ति का लोप होगया? सृष्टि के नियमों का बाल बराबर भी व्यतिक्रम असंभव है। फिर ये सारे चमत्कार किस प्रकार? विवेक ने अंत में कह ही डाला कि न तो गजेन्द्र की रक्षा में व्यावहारिक सचाई है और न द्रौपदी के चीर-वर्धन में व्यावहारिक सत्य! चावल-अर्पण से निर्मित सुदामा के सदन में नही चमत्कार है जो अल्लादिन के लालटेन घर्षण से निर्मित राज्य प्रासादों में!

हिन्दु मन के लिये यह आवाज सहज सुनने लायक नहीं थी। प्राचीनता पर इतने अविश्वास की भावना मेरे हृदय पर आघात कर गई। प्राचीनता की शिला का सहारा पैरों तले से निकलने लगा। सिरपर विवेक की तीक्ष्ण तलवार लटकने लगी। पैरों में भावना की बेड़ी और मस्तिक पर विचार की तीक्ष्ण तलवार! गजेंद्र पर एक ही संकट था, मुझ पर भावना और विचार दोनोंका सह आक्रमण हो गया। मैंने अपने आपको संकट में पाया। सिर घूमने लगा। संकट में सहारा विधाता, या

धाता ! परमेश्वर या माता ! माता का स्मरण आगया और माता के साथ सारी बाल्यावस्था का। उसी के साथ मेरे पोषण तथा मनोरंजन के लिये माता द्वारा निर्मित या कथित नाना चमत्कारों का। मेरी बाल्यावस्था में सारे देवी-देवता मेरी सेवा के लिये थे, पशु पक्षी मेरे आधीन थे, वृक्ष मेरे साथ चलते थे। मेरी हुंकार से सारी दुनिया डर जाती थी। मेरे पालन-पोषण के लिये जो आवश्यक होता, माता वह सब निर्माण कर देती थी। थाली में बचा चार कौर अन्न न खाता और मचल जाता तो माता मुझे कहती, 'वह देखो ! कौआ कौर खा गया।' कौर जाता मेरे मुँह में और खाता कौआ ! गिरता मैं, लगती मुझको और मर जाती चींटी ! खाने में चमत्कार, स्नान में चमत्कार, मेरे गिरने में चमत्कार ! जीवन के चारों ओर चमत्कार ही चमत्कार थे। बाल्यावस्था जाने लगी। चमत्कार भी शनैः शनैः विलीन होने लगे। आज वही माता है और वही मैं। पर मेरे जीवन में चमत्कारों का कोई आभास नहीं। आज भी मेरे अल्प-वयस्क बालक के लिये मेरी माता में वही चमत्कार-निर्माण-शक्ति है और उस बालक का जीवन चमत्कारों का चित्र है। विवेक या विचार के साथ चमत्कार की अमैत्री है। जीवन शुष्क है, नियमबध्द है।

मैं अब समझा। माता और विधाता की चमत्कार-निर्माण-शक्ति का रहस्य स्पष्ट मेरे सन्मुख आगया। व्यक्तिकी बाल्यावस्था में वर्धन-भार वहन करनेवाली माता, बालक के कल्याण के लिये चमत्कारों की सृष्टि का सृजन करती है। मानव जाति की बाल्यावस्था में जाति की नेता-रूपी-माता, जाति की वृध्दि के लिये चमत्कारों का आविष्कार करती है। व्यक्ति की बाल्यावस्था, जातिकी बाल्यावस्था और अनेक व्यक्तियों की विचार प्रगल्भता के अभाव में आजन्म शिशु-स्थिति !

बाल्यावस्था का और चमत्कारोंका सहगमन है। चमत्कार है निर्माताओं की कल्पना सृष्टि में और बालकों के अज्ञान पूर्ण व्यवहार-जगत में !

मुझे कुछ शांति मिली। गजेन्द्र मोक्ष के चमत्कार में, चीर वर्धन की अलौकिकता में, ईश्वर की असीम-शक्ति प्रतिपादन के रहस्यमय तत्व को समझा। अनेक चमत्कारों का चमत्कार पाया। मेरी निगाह से भी कोई निहारेगा ?

वेलोर जेल
१४-५-४३

४

लता

फाल्गुन मास। प्रातःकाल का सुहावना समय। सूर्य के किरण अद्यापि अंबर में ही अन्तर्हित हैं। अपनी कुटिया के बरामदे में पड़ी खटिया का आश्रय। द्रुत गति से घुमाई कर आने के कारण शरीरमें गरमी और चपलता। मानसिक प्रफुल्लता और शांति। खटिया पर बैठने पर भी पैरों का खेल चालू।

निसर्ग में स्तब्धता। आकाश निरभ्र। न कालरूप मेघ, न बिजली, न गर्जन, न वर्षा, न वायु का प्रखर प्रवाह, न सूर्य का प्रताप। आप, तेज, वायु, आकाश—निसर्ग की सब शक्तियां निस्तेज! इसी कारण आराम बाग में नितांत निश्चलता। चारों ओर की निस्तेजता में मेरा तेज क्यों न चमके? शक्ति प्रदर्शन का परिणाम सापेक्षता पर ही तो निर्भर रहता है। न भय है, न शारीरिक कष्ट! मन का साधारण अज्ञात आवेग है। आंखो में चंचलता है। सन्मुख सुशोभित वृक्षों पर दृष्टिपात हुआ! सुन्दर, शुभ्रदल, सरल, कदली पर विशाल पर्ण और फलों का भारी गुच्छ! रम्भा के रम्य उत्तमांग पर कितना कठोर भार! निसर्ग की अक्षम्य निर्दयता!

चक्षु आगे चले। पपैये के अगों का अवलोकन हुआ। छोटे झाड़। तलिन-तनु-तना। बडे बडे पत्ते। अनेक छोटे बड़े फलों से व्याप्त। अल्प वृक्ष पर कितना बोझ? निसर्ग की अव्यवस्था का दूसरा नमूना।

चक्षु भीतर चले गये। अनेक लताओं का नाजुक लावण्य मनोद्यान में दिखाई दिया। कुम्हडे की विशाल फल प्रदायिनी लता। तरबूज को जन्म देनेवाली लता माता। मेरी तुरई को पैदा करनेवाली लिबुजा। लम्बी लौकी की जन्मदात्री वल्ली। बड़े पत्ते, विशाल फल, भार से व्याकुल, धरणीका सहारा ले, जीवन यापन करती हुई अनेक वल्लियां मैंने देखी। साथही देखा, विशाल वट वृक्ष पर अतिलघु फल। पीपल का छोटासा निकम्मा फल। नीम की विशालता और नन्हीसी निबोली! इमली का लंबा विस्तृत वृक्ष और छोटी छोटी फलियाँ। विशाल वृक्ष, लघु फल! अल्प वृक्ष, विशाल फल! नाजुक लतायें और गुरुभार फलोत्पत्ति। विचार आया, 'यह क्या है? यह कौनसा न्याय है? कौनसी व्यवस्था?"

इतने भार वहन से कदली की उम्र अल्प ! पपैये का जीवन छोटा ! लतायें लघुकाल जीवी ! पर कदली में कितना जीवन है ? वल्लियों में कितनी विलक्षण जीवन विपुलता है ? शीघ्र जीवन-विकाश ! शीघ्र फलदान, और शीघ्र विनाश ! कदली कितना उपयोगी है ? लतायें कितनी परोपकारी हैं ? मानवों की शीघ्र सेवा की अलौकिक लगन है ! अतः आशु विकाश और आशु विनाश। पर, वट, इमली, नीम, पीपल इनका क्या काम ? कोई लाभ नहीं। विलंब से विकास और दीर्घकाल से नाश; यही इनका गुण है।

मानवी हृदय की अकृतज्ञता का परिचय भी मुझे मिला। निरुपयोगी वट की वह पूजा करता है ! पीपल की आराधना करता है ! नीम का आदर करता है ! पर किसी एक भी लता की पूजा के लिये अक्षत चावल नहीं चढ़ाता। यह क्यों ?

मानवी मन, मूल में अमरता का आराधक है। उपयोगिता की भक्ति इसके हृदय में गौण स्थान रखती है। वट, पीपल, नीम चिरजीवी हैं। लता, कदली, पपैया शीघ्र विनाशी हैं। अमरत्व की आराधना की भावना ने ही मानवों से आगमों की पूजा करवाई है ! वसुंधरा व्यापी, पर अल्प-जीवी तृण की आदर-भक्ति कौन करता है ? वृक्षों की, पहाड़ों की पूजा समझी। लता की उपेक्षा भी समझ में आई।

मैं किसकी पूजा करूं ? लता या तरु ? किसका अनुकरण करूं ? वृक्ष या वल्ली ? चिर, पर बेकार जीवन व्यर्थ है। लता मेरा आदर्श है। लता मेरी आराध्य देवता है ! मृत्यु अवश्यंभावी है। फिर शीघ्र जन्म, शीघ्र फल और शीघ्र विनाश; यही मेरा जीवन कार्यक्रम क्यों न हो ?

वेलोर जेल
१६-६-४३

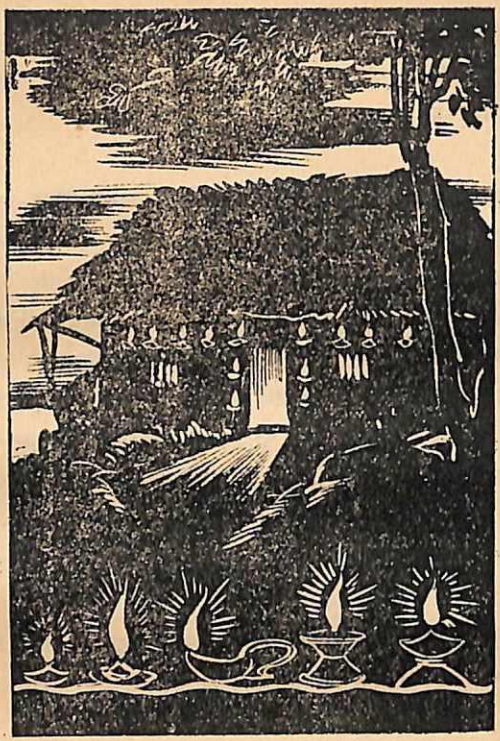

५

दीपपंक्ति

सूर्य के चारों ओर पृथ्वी की एक प्रदक्षिणा पूरी हुई। अनंत काल में से एक वर्ष व्यतीत हुआ। मेरे जीवन की लंबाई में से एक वर्ष कम हो गया या मेरे जीवन आरंभ से पृथ्वी प्रदक्षिणा की एक

संख्या बढ़ गई। चली पृथ्वी और जीवन गया मेरा! क्या ही अच्छा होता यदि पृथ्वी प्रदक्षिणा का समय वर्तमान समय से दसगुना होता ताकि मेरी जीवन लंबाई भी दस गुना बढ़ जाती।

पृथ्वी प्रदक्षिणा का आरंभ कब हुआ मालूम नहीं। अनंत काल-चक्र में कहां आरंभ और कहां अंत! जहां चाहे वही आरंभ और उसी अपेक्षा में अंत। मानव समाज में वर्षारंभ भिन्न भिन्न समय में है। जनवरी की सर्दी के दिनों में वर्षारंभ! चैत्र की गर्मी में नव-वर्ष का जन्म! कार्तिक में नव-वर्ष का आगमन! और चंद्र के साथ घूमते हुये मोहरम से नई साल। तब मैं अपने जीवन आरंभ से पृथ्वी प्रदक्षिणा का आरंभ मानता हूं। मैं विश्व का केंद्र हूं। और अपने जन्मकाल से ही, अनंत काल में नवीन गणना का श्रीगणेश करता हूं। एक प्रदक्षिणा मेरा एक वर्ष। दो प्रदक्षिणा दो वर्ष। इस प्रकार पृथ्वी प्रदक्षिणा करती रहती है और प्रति परिक्रमा के अन्त में मेरे जीवन के पुराने वर्ष की समाप्ति और नये वर्ष का आरंभ हो जाता है। मेरा वर्षारंभ भिन्न, पत्नीका अलग, मेरे पुत्र पुत्रियों का अन्य। अनंत काल की एकता में हमारे व्यक्तिगत जीवन की भिन्नता! एकता और भिन्नता; व्यक्ति और समष्टि! यह विश्व दर्शन है। दोनों का अस्तित्व है। एक के भाव में दूसरा है और एक के अभाव में दूसरे का अभाव है। अनंत काल का निर्माण किसने किया मालूम नहीं! पर सान्त काल का निर्माता मानव है— इसे प्रतिक्षण देखते रहता हूं।

एक प्रदक्षिणा पूरी हुई। मेरा जन्म दिन आगया। आरंभ के साथ समारंभ! आनंद-उत्सव हमारी संस्कृति का सार है और मानव के सच्चे स्वभाव का चिन्ह है।

मित्रों के प्रेम की वर्षा, अच्छा भोजन, मिलन, आनंद-प्रदर्शन आदि कार्यों में दिनांत शीघ्र होगया प्रतीत हुआ और रात्रि के काल का भी उपयोग करना पड़ा। अपनी जंगली कुटिया पर विलम्ब से पहुंचा। रात्रि का राज्य! अंधकार का आवरण! वायुकी शान्त अवस्था! समशीतोष्ण की सुखद वर्षा!

मेरे आप्त-मित्रों ने यदि ममता का प्रवाह बहाया था तो मेरा बाल्यकाल से साथी नौकर, अपना प्रेम तथा आदर प्रदर्शन क्यों न करता? जन्म दिन के उपलक्ष में अपढ़ नौकर ने अपनी बुध्दि और भावना के अनुसार कुटिया को सजाया था। जन्म दिन मेरा और सजावट कुटिया की! चेतन के सम्पर्क से जड़ में भी जीवन आ जाता है। केलवृक्ष, आम्रपर्ण, विविध पुष्प, अनेक तृण—सब का संमिश्र श्रृंगार है। बरामदे में दीप-पंक्तियों का प्रकाश प्रस्फुटित हो रहा है। दीपक के जितने प्रकार नौकर प्राप्त कर सकता था, उन सबका वहाँ अस्तित्व है। किसी आले में मोमबत्ती खडी है, कहीं घृत-दीप जल रहा है। तिल्ली के तेल से जीवन खींचते दीप वहाँ हैं। कुछ दीपों में बिनौले डाल विशाल दीप-ज्योति जगाई है। मिट्टी के तेल की एक छोटीसी चिमनी भी अपनी चमक दिखा रही है। विविध दीप-शिखाओं को जीवित रखने में नौकर निमग्न है। जिस दीप को जिस स्नेह की आवश्यकता है वह उसे दे रहा है। दीप-पंक्तियों के चारों ओर घूमता है। सारी दीप ज्योतियां जगमगाती रहे, इस इच्छा से सतर्क हो सब का पोषण और रक्षण करता है।

इस बाह्य व्यवहार के साथ मन में मेरे आगमन की प्रतीक्षा जरूर होगी; साथही होगा कुछ मानसिक विक्षेप मेरे विलम्ब आगमन पर! कितनी उत्सुकता से मेरे आने की वह राह देखता होगा! कुटिया के

फाटक की ओर भी निहार रहा होगा। जरा आवाज़ आई कि मेरे आने की संभावना समझता रहा होगा। मैं सारा बाहरी दृश्य देखता, नौकर की मानसिक अवस्था का सहानुभूतिपूर्वक विचार करता हुआ उसके समीप पहुंचा और मेरे अपने विलम्ब से उद्भूत विक्षोभ को शांति देनेकी प्रामाणिक मनोवृत्ति से मैंने कहा ? "मोहन ! आज आने में जरा देरी हो गई।" मोहन की चंचल गति रुकी ! मेरी ओर देखा ! मुखपर प्रसन्नता प्रगट हुई। नीरव, निस्तब्ध, वह क्षणभर खड़ा रह गया भावनाओं की मौन अभिव्यक्ति अनेक बार मौखिक प्रदर्शन से अधिक बलवान और परिणामकारी होती है। मैंने भी प्रेमभरी निगाह और सस्मित चेहरे से उसकी ओर देखते हुये अपनी टोपी उतार, प्रति दिनके नियमानुसार उसे देना चाहा। उसने अपने हाथों की ओर देखा। तेल लगा है ! मैं समझ गया। जरा हँसा। उसके श्रृंगार-कार्य की सराहना करने की इच्छा से प्रेमभरी आवाज में कहा, 'मोहन ! आज तुमने यह सब क्या किया है। मैं ने तो कहा नहीं था। कितना कष्ट तुमने उठाया है। अभी तक भोजन भी नहीं किया होगा ?"

मोहन के हृदय में शांति और सुख का श्रोत उमड़ आया। उसकी जबान में जीवन जगा। वह बोल गया, "भैया ! आज तुम्हारा जन्म दिन है। उत्सव मनाया है। भगवान तुम्हें सौ बरस की सुखी उम्र दे।"

मेरी प्रसन्नता भी स्वाभाविक। मैंने फिर कहा, "यदि जन्म दिन मनाना ही था तो कुटिया के श्रृंगार के लिये घास पत्तों के अलावा और चीजों का उपयोग क्यों नहीं किया ? इन अल्प प्रकाशित, कष्ट-रक्षित दीपों की जगह किटसन, लालटेन, मोमबत्ती के स्टैंड आदि का उपयोग

क्यों नहीं किया ताकि तुम्हें तकलीफ कम होती और प्रकाश अधिक होता। तुम्हें सब चीजें मिल सकती थीं।"

मोहन ने तृण-पर्ण निर्मित अपने श्रृंगार को देखा। अपनी दीप पंक्ति को निहारा और मेरी ओर देखते हुये मंद मधुर स्वर में बोला, "भैया! आज तुम्हारा जन्मदिन है! तुम्हारे जन्म की आरंभ अवस्था मेरी आंखों के आगे है। उस अवस्था के उत्सव के लिये आरंभ वस्तुओं का उपयोग मैंने किया है।" वह मेरी ओर देखते रहा। मोहन के ये वाक्य सुन मैं स्तब्ध रह गया। मेरे विचारों को चालना मिली। "निसर्ग संसार की मूल अवस्था है अतः घास पत्तों का श्रृंगार है। ये सारे दीप, दीप—जीवन की आरंभ स्थिति है। आरंभ के प्रतीक हैं। आरंभ का आरंभ से उत्सव है, मूलका मूल से प्रदर्शन है। मोहन अपढ, बुढापे के साथ सहगमन करता हुआ, पर वह कितना बुद्धिमान है, कितना कलाप्रिय! उसके कार्य में कितनी युक्तता है!"

मैं जरा द्रवित होगया। सारा बाल्यकाल, मोहन का प्रेम, मुझे खिलाना, और इस जवानी में भी मुझे बालक समझ मेरी हिफ़ाजत और रक्षा करना। सेवक और रक्षक दोनों भूमिकाओं का पूर्ण समन्वय करके व्यवहार करना आदि सारा नाटक क्षणभर में मेरे मानसिक नयनों के सन्मुख खेल गया। मैं भी अपनी मालकी की भावना को भूलकर, बालक भावना से कह गया, "मोहन! तुमने बाल्यावस्था में, जीवन की आरंभ अवस्था में मुझे अपनी गोद में खिलाया था, अपनी उंगली पकड़वाकर चलवाया था, आज भी उसकी पुनरावृत्ति क्यों नहीं करते?"

मोहन क्या कहता? उसकी जिव्हा स्नेह से चिपक गई। उसकी जवानी, मेरा बालकाल! आज उसका बुढापा, मेरी जवानी! वह उस

समय भी नौकर और आज भी नौकर। मैं उस अज्ञान-बाल-अवस्था में भी मालिक और आज भी मालिक। यह सारे भाव चिकित्सा के साथ मेरे हृदय-मार्ग पर घुड़दौड़ लगा गये। मोहन के मूक हृदय में भी इसी प्रकार का भावना-वेग बहता होगा। उसका संकोच मैं देख सका। अपने आपको सम्हाला। मोहन से कहा "मोहन! जाओ हाथ धोकर पीनेका पानी तो ले आओ। तुमने आज बहुत परिश्रम किया है। अब खाना खाकर जल्द ही आराम करो। तुम्हारे आशीर्वाद से और इस सारे उत्सव से मैं खूब सुखी हुआ हूं। तुम्हारा भी लम्बा जीवन हो ताकि मेरी रक्षा करते हो।"

मोहन प्रसन्न-वदन चला गया। जलपान,! वस्त्र परिवर्तन! तारों से मंडित निरभ्र नील आकाश की छाया में, पृथ्वी माता की गोद में बिछी खटिया पर शरीर की स्थिर अवस्था। सारे दिन के क्रिया-शील जीवन के पश्चात् शरीर और मन को शांति की अनिवार्य आवश्यकता। मोहन अपनी कुटिया में, मालूम नहीं किसी विचारधारा में या निद्रा-माता की आधीनता में!

नरम बिस्तरपर शरीर को आराम मिला पर मन की चंचलता का चक्र चलता रहा। मोहन द्वारा जगाई दीप-राशि अब अरक्षित अवस्था में क्षीणत्व प्राप्त करने लगी। मेरे जीवन की मोहन ने दीप-ज्योतियों से तुलना की थी! उनकी क्षीणता, उनका शीघ्र होनेवाला अन्त, मेरे सन्मुख नाचने लगा, और साथही मेरा निज का भविष्य!

आँखें दीप ज्योतियों ने पकड़ ली! उनका सतत निरीक्षण मेरा कार्य हो गया। शनैः शनैः दीप बड़े होने लगे। हरेक की अन्त समय की अवस्था को मैं देखने लगा। घृत-दीप का प्रकाश कटोरी के भीतर समाते

गया और उसका कब अन्त हो गया इसका साक्षात्कार ही नहीं हुआ। कटोरी के चारों ओर अन्धकार का आभास पा अन्तका अनुमान कर लिया। मोमबत्ती पिघलती गई! शरीर का नाश दिखाई देता रहा! उसकी विगलित अवस्था बढ़ती गई और अन्त में शरीर बेकार होते और बत्तीको बुझते देखा। जरासा अग्निकण चमकता दिखाई दिया और बुझ गया। तेल-दीप, स्नेह समाप्ति की स्थिति में कुछ बढ़ते, फड़फड़ाते, जीवन रक्षाका सम्पूर्ण प्रयत्न करते, बत्ती में के शेष स्नेह को जीवन लंबाई के लिये खींचने में सारी शक्ति लगाते हुये, अन्त में तारावत् चमकते और पश्चात् अंधकार के परदे में प्रवेश करते दिखाई दे गये। ज्यों ज्यों दीप ज्योतियों का अंत होता गया प्रकाश का पसारा कम होता गया। हर दीप के अन्त के साथ प्रकाश की मात्रा का प्रमाण कम होने लगा। बिनौला भरे विशाल शिखाधारी दीप भी अस्तंगत हुए। बिनौलों में चिनगारियाँ अवशेष रहीं। वे भी अशेष हो गईं। एक के पश्चात दूसरा, सारे दीप बुझ गये। चिनगारियां भी चली गईं और सारा बरामदा अंधकार व्याप्त होगया। प्रकाश का निशान नहीं, दीपों के अस्तित्व का दर्शन नहीं। कल्पना में दीपों को देखता हूं, पर प्रकाश विनष्ट होगया है। अब पृथ्वी तलपर कहीं प्रकाश दिखाई नहीं देता। आकाश में तारे हैं। पृथ्वी पर तमावरण है और इसमें आछन्न में पड़ा हुआ हूँ। मेरा अस्तित्व है, मेरी अंतर्ज्योति या जीवनज्योति अभी जलती है पर उसका बाह्य प्रकाश दिखाई नहीं देता। दीपज्योतियों में तम नाश की शक्ति! मुझमें वह शक्ति नहीं! पर मुझे अपने अस्तित्व का भान है, अपना ज्ञान है। मेरी ज्योति का प्रकाश भाव या ज्ञान-स्वरूप है। अपनी ज्ञानज्योति की दीप्ति में देखने का प्रयत्न करने लगा।

ये सारी भिन्न भिन्न दीप ज्योतियां कहाँ चली गईं ? उनका प्रकाश कहाँ विलीन होगया ? अंधकार ने उन्हें अपने में समा लिया या वे किसी विश्व-तेज में मिल गईं! अथवा उनका भिन्न भिन्न प्रकार का जीवन था, हर ज्योति का भिन्न प्रकार का संपर्क था और प्रकाश में भी भिन्नता का भाव था; अतः अपने कर्मानुसार वे ज्योतियां कहीं भिन्न अवस्था में अदृश्य रूप में पड़ी हैं, और फिर नव-रूप धारण करने के प्रयत्न में हैं। प्रति निशा के जन्म के साथ करोड़ों दीपज्योतियां जगती हैं और प्रति उषा के उदय के साथ करोडों का अंत होता है। कहां भिन्न अस्तित्व ?

विश्व-तेज मूल में एक रूप है। संम्पर्क से उसमें भिन्नता पैदा होती है। जल, मूल में एक रूप है। बादल के हर जल-कण में एक ही गुण-धर्म या शक्ति है पर बरसने पर मिश्रण के अनुसार उसका भिन्न रूप है। नाले में न्यारा, कीचड़ में मृतिकामय, गंगा में पवित्रता का प्रवाह, गटर में गंदगी का वाहक, गरम झरने में आगका स्वरूप, समुद्र में लवण-मय और मेरे ठंडाई के गिलास में मधुर शर्करा का साथी। इन सारे स्वरूपों में से आकर्षित वाष्प-रूप में, बादलों में पहुंचते जल में, फिर वही पवित्रता, वही मूल स्वरूप, वही मूल धर्म ! मिश्रण में जल की भिन्नावस्था, मिश्रण से अलिप्तता में मूल-स्वरूप की एकता।

मेरी अपनी ज्योति भिन्न। हर शरीर में जीवन-ज्योतिका भिन्न-स्वरूप, भिन्न शक्ति ! शरीर त्यागते ही आत्माका मूल रूप में मिलन। दीप ज्योतियां विश्व तेज में, भिन्न स्थितिका जल आकाश-व्यापी बादलों के विराट स्वरूप में और भिन्न मानव आत्मायें विश्व के मूल तेज में, मूल प्रकाश में, मूल स्वरूप में। बादल से बरसना निश्चित, विश्व-प्रकाश से फिर फैलना अनिवार्य ! मिलन-भिन्नता,

मिश्रण-अमिश्रण, जन्म-मृत्यु—यह सब विश्व व्यवस्था का सर्व व्यापी चक्र है। मेरा जीवन अनंत है, अस्तित्व अमर है! जन्म में विशेष व्यक्तित्व है और मृत्यु में, अमरत्व में विलीनत्व! मन को शांति मिली। अपनी अमरता को पाया। अपने जन्मदिन, अपने अनंत जन्म देख सका और भविष्य को निहार सका। मानवों के साथ की अस्थायी भिन्नता और मौलिक एकता का अवलोकन कर सका। अपना जन्म सफल समझा।

मृत-दीपों का दयामय स्मरण करते हुए, मैं सजीव मृत्यु की अवस्था में पहुंच गया।

वेल्लोर जेल
९-३-४४

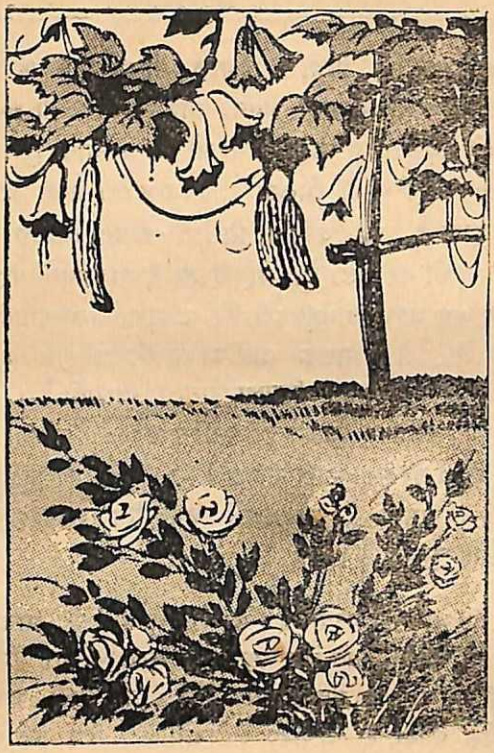

६

निष्फल पुष्प

अनन्त सृष्टि के अवलोकन में, मैं अपने आपको अत्यन्त अल्प अनुभव करता हूँ। मेरे ही प्रमाण में मेरी छोटीसी कुटिया है। दोनों

की स्वल्पता में समानता है। मित्रों के विशाल महलों में अनेक बार घूमता हूँ। दुनिया के अलौकिक कला-भवन, ताजमहल में भी चक्कर लगा आया हूँ। बड़े बड़े विस्तृत उद्यानों में भी टहल आया हूँ। पर जो आनंद मुझे अपनी कुटिया में मिलता है, जो प्रसन्नता अपने उद्यान-भ्रमण में प्राप्त होती है, वह वहाँ न मिली। बम्बई कलकत्ते की डाम्बरमय स्वच्छ सड़कों पर चला हूँ, नई दिल्ली के राज-मार्गों पर भी भटका हूँ, पर वहाँ, वह आकर्षण नहीं जो मेरे उद्यान के पगडंडियों के समान छोटे पथों में! मेरे बालक बालिका का सौन्दर्य कुछ अलग दिखाई देता है। पत्नी का स्वरूप निराला सौन्दर्य बरसाता है। मेरे अपने माता-पिता का सान्निध्य अलग ही भक्तिभाव को जगाता है। यह सारा सौन्दर्य, सारा स्वरूप, सारी भक्ति और भावना की विशेषता ममत्व की माया है! ममत्व में, अपनत्वमें अवर्णनीय आकर्षण है। ममत्व जीवन का लोह-चुम्बक है।

ज्ञानी कहते हैं, आकर्षण बन्धन है। पर मैं देखता हूँ कि आकर्षण ही जीवन का सार है; चेतना, गति और स्फूर्ति है। आकर्षण-हीन जीवन, बन्धन-हीन भले ही हो जाय पर वह निरर्थक और निस्सार भी अवश्य हो जायगा। सार्थक जीवन में आकर्षण अनिवार्य है। फिर वह चाहे सृष्टि का हो या सृष्टि कर्ता का; निर्माता का हो या निर्मित वस्तु का! निर्माण में निर्माता को निहार लें तो आकर्षण और अबंधन, आनंद-सरिता में दोनों श्रोतों का समागम हो जाय!

मेरे जीवन में आकर्षण का अनन्त आवरण है। जड़-चेतन, सब में मेरा अनुराग है। जड़ पन्नों पर काली स्याही से लिखे प्राचीन, अर्वाचीन, देशी, परदेशी विचार-कण मुझे आकर्षित करते हैं; आनंद देते हैं। पहाड़ों पर हर्ष है। प्रकृति के पत्ते पत्ते पर जीवन रस का प्रवाह

अंकित है ! मानव सृष्टि में प्रेम का आकर्षण है और जीवन-जतन का अटूट धारा प्रवाह है !

ज्ञानी कहते हैं मनुष्य, ईश्वर की स्वल्प प्रतिमा है। मैं देखता हूँ कि मेरा स्वल्पारण्य भी सारी प्रकृति का संक्षिप्त संस्करण है। मेरे उद्यान में पुष्प-वृक्ष हैं; लतायें हैं; फल-पौधे हैं; छोटे मोटे वृक्ष हैं; तृणाच्छादित हरे लॉन हैं; झरने हैं और कूप के रूप में छोटा समुद्र है। मैं और मेरा उपवन विश्व का स्वल्प स्वरूप हैं। उसके चारों ओर कांटों का गुंफन भी है। जब मैं छोटे से दरवाजे में से घुसता हूँ तो विचार आ जाता है कि जीवन चारों ओर कांटों से व्याप्त है। साथही विचार दौड़ जाता है ' कांटों के आवरण में ही जीवन की रक्षा है। '

मेरे बाग की क्यारियों में जब मैं पुष्प-पौधे लगाता हूँ, बीज बोता हूँ, तब मैं अपने आप में निर्माण-शक्ति का अनुभव करता हूँ। फल-वृक्षों को, लताओं को खाद देता हूँ, पानी पहुंचाता हूँ, तो मैं माली बन जाता हूँ। जब बाग के पुष्पों को सूंघता हूँ, फलों का आस्वाद लेता हूँ, भाजी का भोग करता हूँ, तो खुद को भक्षक के रूप में पाता हूँ। मैं जन्मदाता हूँ, पोषण-कर्ता हूँ और विनाशक भी ! अपने उद्यान के लिये मैं ब्रम्हा-विष्णु-महेश त्रिमूर्ति हूँ। निर्माता ही विनाश कर्ता ! क्या सम्मिलन है ! क्या स्वरूप है ! क्या आनंद ! और क्या दुःख ?

प्रसन्नतामय प्रातःकाल के प्रथम प्रहर में अपने कुटीर के प्रांगण में उद्यान सृष्टि को निहारते खड़ा हूँ। मुझे पुष्प पौधों से प्यार है। लताओं से प्रेम है। वृक्षों से स्नेह है। और तृण से भी तन्मयता का अनुभव है। उन्हें भी मुझ से ममत्व है। पर वे जड़ से जकड़े हैं अतः दौड़कर मेरे पास आ नहीं सकते। पर अपने पल्लव-करों के संकेत से मुझे

निमंत्रित किया करते हैं। अपने सुगंध संदेश को मेरे पास भेजा करते हैं। वे लोह चुम्बक हैं। मैं आकर्षित हो जाता हूँ। धीरे या तेजीसे उनके सान्निध्य में चला जाता हूँ!

पुष्प क्यारी के समीप जा पहुँचा। गुलाब का खिलता सौन्दर्य है! मोगरे की मस्त महक का प्रवाह है! कतिपय मोगरा-कुसुमों को अपने साथ ले आगे बढ़ा। रास्ते में गुलाब पौदे के सिरपर झूमते सुमन को अपने दो नखोंसे अलग किया। दो अग्र-अंगुलियों में उसे आहिस्ते से स्थापित किया। अत्यन्त सूक्ष्म कांटों का उंगलियों को अनुभव आया।

कभी मोगरे के पुष्प संग्रह को नासिका के सान्निध्य में ले जाता, कभी गुलाब को नासिका स्पर्श करवाता— दोनों की सुगंध का स्वाद लूटता, मैं आगे चला। चारों ओर आकर्षण ही आकर्षण था!

मेरी प्यारी तरकारी तुरई की दाता-लता के समीप पहुंचा। पीले विशाल खिले पुष्प हैं! छोटी मोटी हरी लटकती तुरइयाँ हैं! तुरई के पुष्पों को देख विचार आगया। "गुलाब में कितना सौन्दर्य है और साथ ही कितनी सुगंध! तुरई के पुष्प में न वह सौंदर्य है और न वह गंध! इस पुष्प का जीवन व्यर्थ है!" तुरई से क्रीड़ा करनेवाले वायु प्रवाह ने दौड़कर मेरे कान में कह डाला—"गुलाब में सौन्दर्य और सुगंध है पर वह निष्फल-पुष्प है। तुरई का पुष्प निर्गंध है पर वह सफल-सुमन है। गुलाब वंध्य है तुरई पुष्प अवंध्य है!" तब क्या गुलाब का जीवन व्यर्थ है, निष्फल है?

गुलाब, मोगरा, बकुल, जाई, जुही, चमेली, चम्पा, निशिगंध, केवडा, पारिजात, आदि अनेक ससौरभ, पर निष्फल-सुमन, मेरे स्मृति

पटल के सन्मुख आगये। साथही तुरई, ककड़ी, लौकी, कुम्हड़ा, तरबूज, खरबूजा, भेंडी आदि निर्गंध पर फलदाता पुष्पों की याद आगयी। टमाटर, पपीता, संतरा, जामुन, अमरूद आदि फल-तरुओं के फूलों का भी स्मरण आगया।

वह क्या विधि व्यवस्था है? सगंध पुष्प फलहीन हैं। फलदाता पुष्प गंध विरहित हैं। निर्गंध पुष्प से प्राप्त फल इतने मीठे हैं? यदि इन पुष्पों में सौरभ और सौन्दर्य भी होता तो फल कितने मीठे होते? गुलाब फल देता तो वे फल अलौकिक होते! विधि ने यह क्या अपूर्ण व्यवस्था की है? गंध, सौन्दर्य, फल, सबका समन्वय क्यों नहीं किया? क्या वह उसकी शक्ति के परे था या मानवों पर उसकी पूर्ण कृपा का अभाव है?

वायु का बहता झोका आया! विश्व ध्वनि ने ध्वनित किया! "यह व्यवस्था मानव कल्याण के हेतु ही है। यदि सुन्दर, सगन्ध, पुष्पों को ही फलदाता बना दिया जाता तो तत्क्षण-सुख-प्रेमी मानव, गंध-लालसा से उन्हें तोड़कर फलों से वंचित रह जाता। तुमने गुलाब, मोगरा तोड़ लिया पर तुरई का सुमन तोड़ने की इच्छा न हुई। गंध के मोह में मानव फलहीन न रह जाय इस कारण विधि ने सफल पुष्पों को निर्गंध बनाया। यदि मानव अपने आप को फल की इच्छा से रोक लेता तो वह गंध का आनंद न लूट सकता। मानव सुवास का सुख लूटे, अतः सगंध पर निष्फल पुष्प हैं। इस व्यवस्था में मानव की कमजोरी की रक्षा है, और उसके लिये गंध, सौन्दर्य, फल, सब के आस्वाद की समुचित व्यवस्था है!

विश्व निर्माण में उपयोगिता और सौन्दर्य की विभिन्नता है। मेरे जीवन में दोनों का एकीकरण क्यों न हो? मानव-निर्माण, विश्व-निर्माण से विशेष क्यों न हो? मानव की विशेषता, विभिन्नता के समन्वय में है। निष्फल-पुष्प ने मानवी जीवन के आदर्श का अवलोकन करवाया! पुष्प की निष्फलता फलवती हुई!

वेलोर जेल
२-७-४३

ह/139

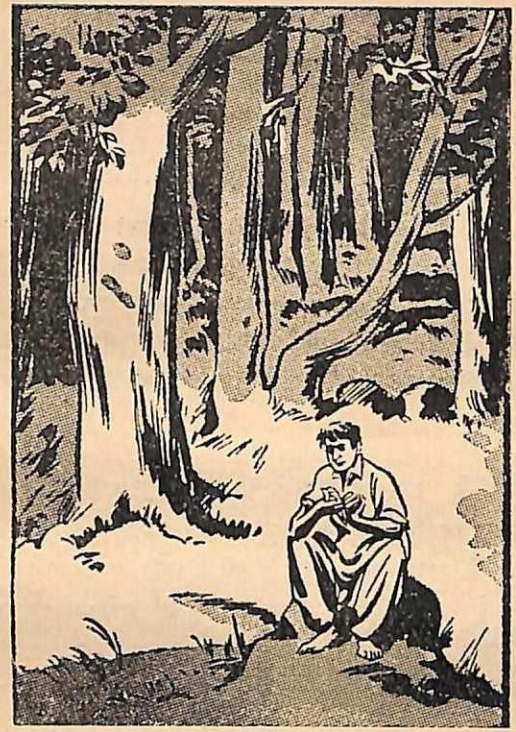

७

श्रीषणवन

समस्त ऋतुओं में वर्षा ऋतु मेरे लिये अधिक आकर्षक है। मैं, कभी कभी उसे ऋतुराज भी कह दिया करता हूं। ग्रीष्म की गर्मी और शुष्कता के पश्चात वर्षा की शीतलता और हरियाली सापेक्षता से ही मूल्यवान है। फिर वर्षाऋतु की बहुविधता और

परिवर्तनशीलता ! बादल, बिजली की कड़कड़ाहट, धीमी और मूसलधार वर्षा, सूखे खेतों का हरा होना, शुष्क नदियों का फिर बहना, बहती सरिताओं का विशाल प्रवाह, तालाबों का भरना, चारों ओर जीवन विपुलता की बाढ़ सी आजाती है ! प्रकृति का सौन्दर्य शतगुना अधिक हो जाता है। मानवी आनंद की भी वृध्दि होती है। वर्षा के रूप में प्रकृति की दया और ममता दिखाई देती है तो बिजली के रूप में, कड़कड़ाहट की गगनभेदी ध्वनि में, बादलों के अति काले घने आच्छादन में और आँधी के वेग में, प्रकृति की भीषणता भी दिखाई देती है। सौंदर्य और भीषणता का जितना सम्मिलन वर्षा में है उतना और किसी ऋतु में नहीं !

इस ऋतु में मित्रों के साथ वन-विहार मेरा साप्ताहिक कार्यक्रम है। कुछ मित्रों के साथ पहाडी जंगल में पहुंचा। मोटर रास्ते में खड़ी कर दी और अरण्य में उतर पड़े। चलने लगे। सारी बाल-क्रीडायें होने लगी। एक झरने ने रास्ता रोक दिया। उसका झरझर बहता निर्मल जल ! उसका नाद ! चारों ओर की झाड़ी, स्वच्छ रेत आदि अनेक बातों ने सबको आकर्षित कर लिया। जल किनारे डेरा लग गया।

कुछ मित्र जल में खड़े दिखाई दिये। किनारे खड़े मित्रों पर जल-तुषार फेकते नजर आये; पानी में पत्थर फेक जवाब दिया जाने लगा। कुछ शान्त खड़े अवलोकन करते रहे। कुछ बात करने लगे, कुछ खाने पीने आदि सामान की ठीक व्यवस्था में जुट गये। हरएक आज़ाद था ! हरएक अपने आप को भूला हुआ था; प्रकृति के साथ समरस हुआ प्रतीत होता था। समाज में सभ्यता तथा प्रतिष्ठा की रक्षा करनेवाले इन मित्रों का व्यवहार जिन्होंने देखा है, उन्हें यह

व्यवहार देख आश्चर्य हुये बिना न रहता। पर यहां दर्शक कौन ? सारे खिलाड़ी ही थे ! इस सामुदायिक क्रीड़ा में कुछ काल मैं ने भी अपना हिस्सा दिया। वहीं सबका पर्यटन समाप्त हुआ और स्थायी डेरा डल गया।

मेरा चित्त मित्रों की इस चंचल खेल-कूद में होते हुये भी अपने प्रकृति प्रेम को नहीं भुला सका था। मैंने झरना पार किया। आगे जाना आरंभ किया। मेरे स्वभाव से परिचित मित्रों ने रोका नहीं ! हँसकर कहने लगे, " जरा जल्दी लौटना ! किसी लता के सान्निध्य में हमें भूल मत जाना। जल्दी नहीं आये तो खाना हम खा जायेंगे और हवा तथा प्रकृति के सौंदर्य का स्वाद तुम चखते रहना। जंगल घना है, इसका ध्यान रखना ! " हर व्यक्ति अपनी प्रकृति तथा सम्बन्ध के अनुसार बात किया करता है। मैंने स्मित-मुख दो-तीन बार पीछे देखा। मित्रों के हास्य में, उनकी बातों में मेरे प्रति उनके प्रेम का परिचय पाया। मित्रोंकी प्रेम वर्षा, प्रकृति का आकर्षण, इन दोनों का आनंद अनुभव करता मैं आगे चला ! चला ही गया ! चलता ही रहा ! खूब घने जंगल में पहुंच गया ! चारों ओर वृक्ष ही वृक्ष ! नीचे घास ही घास ! रास्ता तो जंगल में था ही नहीं। स्तब्धता में आवाज़ ! हवा के झोकों में ध्वनि ! कहीं मानवी श्वास की हवा तक नहीं। रास्ता न मिलने से एक लघुवृक्ष-शाखा को हटाकर आगे जाने लगा। डाली में वस्त्र अटक गया। मैं रुक गया। ऊपर विशाल वृक्ष का आच्छादन ! गति अवरोध में विचार आगया। ' जंगल भीषण हो गया है, बहुत दूर आगया हूँ। मित्र कोसते होंगे ? वापिस क्यों न लौटूं ? "

मस्तिष्क में ध्वनि हुई, " यह भीषण क्या वस्तु है ! " चारों तरफ देखा। भीषण कहीं दिखाई नहीं दिया। फिर आवाज़ आई।

" भीषण—यह मानसिक धर्म है। कल्पना-सृष्टि की वस्तु है। केवल विशेषण है। वह भीतर रहता है, बाहर नहीं; इसलिये उसे देख नहीं सकते। " भीषण का नाश हुआ। दूसरा विचार-भूत आगया। मस्तिक भूतोंका निर्माण-कला-भवन बन गया। " यह वन क्या है? " सब ओर ऊपर नीचे देखा, पर 'वन' कहीं नजर नहीं आया। इधर उधर वृक्षों की विपुलता दिखाई दी! तब वृक्ष ही क्या है यह सवाल सन्मुख आया। वहां भी तना, डालियाँ, पत्तों का समूह नजर आया! एक पत्ता तोड़कर उसे ही जानने का प्रयत्न आरंभ हुआ। पत्ता! रंग है, मृदुता है, गीलापन है, कुछ वजन भी है और अनेक रेषों का पुंज। रंग अलग नहीं कर सका। मृदुता भिन्न नहीं हो सकी। गीलापन भी अप्राप्य दिखाई दिया। वजन को भी पकड़ नहीं सका। तब एक रेषा को ही सारे पर्ण से अलग निकाल लिया। नाखुन-रूपी-शस्त्र से विमनस्क ही उस रेषा का विभक्तीकरण आरंभ होगया। टुकड़े करता ही गया। स्वल्पता आने लगी। विभक्तीकरण कठिन होने लगा। कल्पना ने कहा, "टुकड़े करते थक जायगा! अंत में न रंग दिखेगा, न गीलापन, न मुलामियत, न वजन! एक सूक्ष्म-कण में सब समा जायगा!"

भीषणता मनमें मिल गई! विशाल वन वृक्षों में विलीन होगया! वृक्ष, तने डालियों और पत्तों में पिघल गया। पत्ता बारीक नसों में विभक्त होगया और अन्त में काल्पनिक-कण में कुंठित होगया। मेरा सारा वन, कण में समा गया! भीषण वन की अपेक्षा यह कल्पना अधिक भयानक होगई। इतना बड़ा वन यदि कण में चला गया तो मुझ अल्पकाय मानव का क्या ठिकाना! निज के अस्तित्वपर आघात की संभावना होते ही होश आगया! कल्पना लोक से उतर पृथ्वी पर आया! अपने आप को खड़ा पाया। वन भी दिखाई दिया। मित्रों

का स्मरण आया। घड़ी देखी ! व्यतीत समय का ज्ञान हुआ। बिछुड़े मित्रों से मिलन-हेतु, तेजी के साथ वापिस लौट पड़ा।

झरने के तीर पर मेरी झांकी पड़ते ही मित्र-सेना मुझपर उलट पड़ी। "कुछ खबर है ! कितनी देर हो गयी ! हमारे पेट तो पूरी-पकौडी के लिये पैर पटक रहे हैं और ज़नाब के पैरों को मानो मेंहदी लगी है !" नजदीक पहुंचते ही प्रेममय तीरों की वर्षा होने लगी। 'कहो, सैर अच्छी हुई न ! आज के अरण्य-आखेट का लेखा तो बताओ ! कितनी शिकार की ? कितनी लताओं का लावण्य लूट लाये ? कितने तरुओं से मैत्री की ? कितने पुष्पों का पराग छीना ? कितने कांटों से प्यार किया ?" न मालूम और क्या क्या वह डाला ?। एक मित्र ने गरमी शांत करने के लिये कुछ जल भी बरसा दिया। सब हंस पड़े !

मौन मेरा कवच था, स्मित मेरी ढ़ाल थी। सेवा मेरी रक्षिका थी। विनय मेरा विजयास्त्र था। चारों का मैंने आश्रय लिया।

मैंने खाने पीने का सामान उठाया। व्यवस्था करने लगा। अन्य रस जाकर भोजन-रस आरंभ हुआ। मेरा रस फिर भंग होगया ! मुझे भीषण परमाणु याद आगया ! मुख में भोजन-रस और मस्तिष्क में विचार ! विश्व की कैसी विलक्षणता है ! सूक्ष्म परमाणु भीषण है ! विशाल विश्व आनंददायक है !

आज तक मैं विशालता में भीषणता देखते आया था। आज विपरीत अनुभव पाया। सूक्ष्मता में भीषणता और विशालता में आनंद !

मुझे फिर बहकते देख नजदीक के मित्र ने कंधा पकड़ हिला दिया और कह डाला, "फिर चले किसी प्रेम के पर्यटन में ? पहले पूरी-

पकौड़ी देखो !" मैं ठिकाने आया। विशाल विश्व के सौंदर्य में, कण के भीषण सौंदर्य का अवलोकन करने लगा !

वेलोर जेल
१२-५-४३

८

जन्माष्टमी

एक अमीर मित्र ने अपनी वृद्धा माता की धार्मिक भावनाओं के आदरार्थ विशाल मंदिर का निर्माण किया। कृष्ण भगवान की मूर्ति की स्थापना की। जहाँ कृष्ण वहाँ राधा तो थी ही! काले कृष्ण के साथ गोरी राधा! अंधेरे में न प्रकाश रहता है और न छाया। प्रेम में भी न प्रकाश है और न छाया। प्रकाश भेद है! छाया सत्य की

माया है ! प्रकाश ही छाया पैदा करता है और छाया को भिन्न बना देता है। अंधेरे में छाया मूल में है। प्रेम में अभेद है। प्रेम में छाया मूल में लीन है। अतः काले कृष्ण में राधा को अलौकिक प्रेम संलग्नता है ! अभेद है !

मंदिर उद्घाटन के पश्चात् प्रथम जन्माष्टमी का दिन उदय हुआ। कृष्ण जन्मोत्सव का विशाल आयोजन किया गया। शहर में उत्सव के लिये खास निमंत्रण दिये गये। मेरे पास भी निमंत्रण आया। वर्तमान, अतीत को जगा देता है ! निमंत्रण पढ़ते ही कृष्ण-जन्म का सारा व्यतीत काल नयनों के सन्मुख नाच गया। वसुदेव-देवकी का कारावास ! देवकी के अनेक पुत्र-पुत्रियों का विनाश ! अधकारमय रात्रि; मूसलधार वर्षा ! कृष्णका जन्म ! वसुदेव देवकी की मानसिक यातनायें ! कृष्ण को लेकर वसुदेव का बंदी-गृह के बाहर निकलना। यमुना की भयंकर बाढ ! कृष्ण का चरण-स्पर्श ! बाढ़ का उतरना और नदी का लांघना। गोकुल में नंद के घर यशोदा के कुक्षी-आश्रय में कृष्ण का पहुंचना। यशोदा की नव-जन्म बालिका को कंस के स्वाधीन करना। कंस द्वारा बालिका का इहलौकिक विनाश ! स्मृति ने सब मानों साक्षात् देख लिया। विचार कान में कह गये। "पुत्र की रक्षा के लिये पुत्री का बलिदान प्राचीन काल से चला आया है ! अवतारी पुरुषों ने भी अपनी रक्षा के लिये स्त्रियों का उपयोग किया है। पुरुष की उपयोगिता या प्रधानता और स्त्री की अनुपयोगिता या गौणत्व का सतत् श्रोत संसार में बह रहा है।" हम कृष्ण जन्म मनाते हैं, पर बिचारी राधा का जन्मोत्सव तो कभी होता ही नहीं ! उसकी पूजा करते हैं, नाम स्मरण में कृष्ण के पहले उसका रटन करते हैं पर उसका जन्मोत्सव नहीं ! उसने अपने आप को कृष्ण में विलीन कर लिया है। प्रेम की अभेद अवस्था को पाया है। कृष्ण जन्म में ही उसका जन्म

है और कृष्णान्त में ही उसका अन्त ! पुरुषों का व्यक्तित्व और स्त्रियों का आत्मसमर्पण ! 'राधा-कृष्ण' के मंत्र का अर्थ है !"

भूतकाल के विचारों से थका मन वहाँ से हट वर्तमान में आगया। धर्म प्रेमियों का, कृष्ण भक्तों का उपवास ! मंदिरों में जन्माष्टमी के उत्सव का आयोजन ! घरघर में जन्मोपरांत भोजन के लिये शक्ति के अनुसार तैयारियाँ ! अमीरों के यहाँ पक्वानों का पाक! विचार कहने लगे "यह सब क्या है ? आज माता यशोदा की प्रसूति वेदना की काल्पनिक अनुभूति में उपवास है और साथही यह पक्वान्न बनाने का आयोजन भी ! न भावना रही और न व्यवहार ! आज न कृष्ण जन्मेगा और न देवकी को व्यथा होगी; अतः व्यवहार कहाँ ? यदि भावना में व स्मृति में सारा प्राचीन नाटक खेला जा रहा है, तो उस नाटक में पक्वान्न-पाक को स्थान कहाँ ?"

दिनांत हुआ। रात्रि आयी। मैं जल्दी ही सोया। मध्यरात्रि के समय जन्मोत्सव में जाना था। मैं सदा जाता नहीं। मेरी शयनावस्था में ही कृष्ण-जन्म हो जाता है, और शयनानंद में ही मध्यरात्रि का चंद्रग्रहण लगता है और मुक्त हो जाता है ! आज जन्म के लिये नहीं पर मित्र के निमंत्रण का आदर करने जाना है। अनेक बार ईश्वर की अपेक्षा मानव का अधिक आदर है ! सुख के आकर्षण की अपेक्षा दुख का भय अधिक तीव्र है !

मध्य रात्रि के जरा पूर्व उठा। हाथ मुंह धो अपने आप को सामाजिक सभ्यता का स्वरूप दे, मंदिर में पहुंचा। मित्र दरवाजे पर ही थे। मुझे देख प्रसन्न होना स्वाभाविक ! "आइये" कहकर

स्वागत ! "आज आओगे यह आशा थी"—कहकर मेरे आने के हेतु की सप्रेम स्वीकृति !

जन्मोत्सव का विशाल, सुंदर, व्यवस्था-युक्त आयोजन ! मंदिर का विस्तीर्ण मंडप भक्तों से, विशेषतः स्त्रियों से भरा है। ईश्वर जन्मोत्सव और फिर कृष्ण भगवान का ! जिसे जो चाहिये वह सब कृष्ण जीवन में है। ज्ञानियों के लिये गीता का ज्ञान है; वीरों के लिये समर, बालकाल से जीवन के अन्त तक है ! रसिकों के लिये रास है ! संगीत प्रेमियों लिये मुरली है। धनिकों के लिये द्वारिका की अतुल संपत्ति है। भोजन प्रेमियों के लिये चुराकर माखन मिश्री का खाना है। गरीब मित्रों के लिये सुदामा का प्रासाद है। जंगल में गायें चरानेवालों के लिये गोपाल है, गोवर्धन धारी है; और सेवकों के लिये सारथी है। राधा का अलौकिक प्रेम है ! द्रौपदी का चीर-वर्धन है ! रुक्मिणी का मनोरम स्वयंवर है और सुभद्रा हरण की मनोहारी घटना ! प्राचीन भारतीय सुमन-सृष्टि में परम परागयुक्त सर्व-प्रिय-पुष्प, कृष्ण-कुसुम ही है ! कृष्ण-जीवन-सरिता में सब रस प्रवाहित हैं, जिसे जो चाहिये वह ले ले ! ऐसे जीवन के भक्तों की क्या गिनती !

घड़ी ने बारह घंटे बजाये। बालकृष्ण ने धरती पर अवतार धारण किया। सुंदर पलने में झूलते बालकृष्ण ! जन्म का आनंद उन्माद प्रस्फुटित हुआ ! घंटानाद आरंभ हुआ। मंदिर और समीप का सारा वातावरण नादमय हो गया ! भक्तों की तालियाँ, जयजयकार, उच्च-स्वर की आरती। ध्वनि-प्रवाह में मैं भी बहने लगा। आवाज की प्रखरता ने अन्य सारी इंद्रियों को शिथिल बना दिया। विचार-शक्ति भी स्थगित सी प्रतीत होने लगी। वातावरण का असर अवश्यंभावी होता है। बालक के कोमल कानों पर कठोर नाद का कितना आघात होता

होगा ! पर इस प्रेम प्रवाह में कौन विचार करता ? प्रेम में अनेक बार विवेक का अभाव हो जाता है ! पंजरी-प्रसाद वितरण हुआ। 'जन्मोत्सव समाप्त हुआ ! भक्तगण भोजन के लिये निज-गृह जाने लगे। मित्र की इज़ाज़त ले मैं भी वापिस आया। बिस्तर का सहारा लिया। दयालु निद्रा ने कृपा की। नयनों को निमीलित कर चंचल चक्षुओं को अचल बनाया। आखों के आवरण को खींच बरौनी की खूटियों से उसे बांधकर बाह्य जगत पर पर्दा डाल दिया; पर चंचल चित्त ने निद्रा माता की लोरी का आदर नहीं किया। वह भकटते ही रहा ! जागृतावस्था की विलक्षण प्रतिध्वनि निद्रावस्था में हो जाती है ! जागृति और सुषुप्ति के बीच में आगया। स्वप्न संसार का द्वार मेरे सन्मुख खुल गया। निश्चल शरीर में मन, नव संसार का निर्माण करने लग गया ! एक पलभर में मेरे मस्तिष्क में ईश्वर के दरबार की स्थापना हो गई। मैं उस दरबार का अतिथि हो गया ! अंधेरी मध्य रात्रि के पश्चात् भी भगवान अभी जागृत हैं ! अकेले विराजमान हैं। आखों पर निद्रा का प्रभाव है। नेत्र अर्ध-निमीलित हैं। दोनों कानों में हाथ की अंगुलियाँ डाले भगवान विचार-मग्न विराज रहे हैं।

उनका यह स्वरूप देख मैं चकित होगया। आहिस्ते से समीप जा मैंने पुकारा, 'भगवन् !' पुकार कौन सुनता ? भगवत् नयनों ने मुझे मदद की। मेरा आगमन उन्हें दिखाई दिया। आंख सम्पूर्ण खुली। मैंने प्रणाम किया। भगवान ने सिर हिला आशीर्वाद दिया। नयन संकेत से ही मध्यरात्रि में आनेका कारण पूछा। मैंने भी नीरव संकेत से ही काम लेना आरंभ किया। अपनी उंगलियों को दोनों कानों में डाल, बाहर निकाल, दोनों हाथोंको हिला भगवान की कर्णांगुली-अवस्था का कारण जानना चाहा ! उसी अवस्था में उत्तर मिला- " पृथ्वी का कठोर और विकट नाद कष्टदायक होगया है ! कोई प्रातः-

काल ही अत्यंत उच्च स्वरमें पुकार कर निद्रा भंग कर देता है ! कहीं प्रति रविवार घंटा नाद है ! कहीं कहीं प्रातःसायं आरती है। शंख ध्वनि है ! सारे दिन भजन-कीर्तन और याचना का आर्तनाद है ! आज तो जन्मोत्सव का महा-निनाद अभीतक मेरे कानों में पहुंच रहा है। मेरे कानों पर हर कोई आघात करता है ! मेरे हृदय से शान्त, प्रेममय चर्चा क्वचित ही कोई करता है। आघात से प्राप्ति की भावना दुनिया में बलवान है ! प्रेम से विजय का मार्ग दुनिया अभी सीखी नहीं है। प्रेम का पाठ पढ़ाने के लिये ही मैं ने कान मूंद लिये हैं और हृदय खोल दिया है !'

भगवद्वाणी ने विराम किया। आंखें कुछ बंद सी करलीं। दरबार लुप्त होगया ! मानसिक सृष्टि विलीन होगई ! विनाश का आघात हुआ और आघात के धक्के ने निश्चल शरीर को चेतन बना दिया ! निद्रा चली गई। मैं जग गया। ईश्वर और निद्रा दोनों को खो बैठा ! कृष्ण-जन्म और भगवद्दर्शन इन दोनों का मिलान करते हुये निद्रा की आराधना करते रहा। कृपा-प्रसाद की वर्षा हुई। शांत निद्रा के अनंत सागर में मैं तैरने लगा। शांति में मन भी चंचलता को त्याग शक्ति-संग्रह करने लगा ! सूर्य किरणों ने आकर प्रभात के ज्ञान का संदेश दिया ! मैं जग उठा ! मुंह से निकल गया, "हृदय ही याचक है और हृदय ही दयालु दाता !'

बेलोर जेल
१५-५-४३

९

टांगेवाला

गरमी के दिन ! दोपहर का समय ! प्रखर ऊष्णता का कष्टदायी प्रभाव ! आवश्यकता कष्ट में भी गति दे देती है। मेरे अमीर मित्र को और मुझे शहर के बाहर किसी जरूरी काम से जाना था। मित्र का मोटर-तांगा सब अन्य कामों में चले गये थे। किराये के तांगे का

के. म. म. द. पा. गोलवाड,

आश्रय लिया। मोटर तांगा रखनेवाले अमीर का मामूली किराये के तांगे में जाना, रास्ते चलते व्यक्तियों के लिये कुछ कुतूहल की चीज अवश्य थी। कुतूहल में अनेक बार आनंद है! जनता सदैव का मार्ग देखने की आदी रहती है। नवीनता में उसे विलक्षणता नजर आती है। इसी मानवी स्वभाव में प्राचीनता के स्थायीत्व का रहस्य है!

काम निबटाकर वापिस आये। मित्र की दूकान पर उतरे। मित्र ने तांगेवाले को एक रुपया देने के लिये अपने रोकड़िया से कहा। तांगेवाला मुंह की ओर देखते रहा। रुपया लिया और बहुत विनय के साथ कहा, 'मालिक! बहुत काम किया है, दो रुपया मिलना चाहिये!" मित्रने हँसते हँसते हाथ हिलाकर कहा, "अभी ले जाओ फिर कभी कसर निकाल देंगे।'

दुनिया में व्यक्तित्व का कुछ अजब प्रभाव है! तांगेवाला इस आश्वासन से कुछ संतुष्ट हुआ। हाथ जोड़ जाने लगा। मैंने उसे वापिस बुलाया। उसके कंधे पर हाथ रख मैंने कहा, "क्यों! तू पागल है? दो रुपये का काम करके एक रुपया लेकर चला जा रहा है। जिस अमीर ने दो रुपये का काम करवाकर एक रुपया दिया है, वह कभी एक का काम करवाकर दो दे देगा, यह आशा रखना पागलपन है! अधिक श्रम करवाकर कम देना इसमें अमीरी की जड़ है और परिश्रम के प्रमाण से काम लेना यह गरीबी का कारण है। जीवन में नक़द रोजगार कर! उधारी में किसीको फायदा नहीं है। आशामय उधारी ने क्या व्यक्ति और क्या मुल्क सबका नाश किया है!"

गरीब तांगेवाले के हृदय में स्वाभिमान की कुछ भावनायें उठीं। उसके चेहरे पर कुछ झलक दिखाई दी। तथापि बोलने का साहस न हुआ। मित्रने अपने रोकड़िया से कहा—'इसे एक रुपया और दे दो।"

मित्र की इस कृति को देख मैं मुस्कराया। मेरी ओर देख मित्रने कहा, 'तुम्हारे कथन ने मेरी आँखें खोल दी। भविष्य में यह अपराध मुझसे न होगा।" मैंने कहा, "मुझे अत्यंत हर्ष है पर तुम भी तो उधार व्यापार के गरीब तांगेवाले ही हो! भविष्य की आशा में कितना व्यर्थ दान देते हो? ईश्वर के नाम पर कितनी हुंडियाँ लिखते हो? यदि सिकरने की व्यवस्था हो जाय तो कुबेर का दिवाला निकल जाय!"

मित्र ने जबाब दिया "आज समझा! मेरा जीवन डबल अन्यायों के बीच बहता है।"

वेलोर जेल
१५-५-४३

१०

मृगतृष्णा

अंग्रेजों की साम्राज्य सीमा में रवि को विरम नहीं। कहते हैं कि इनके साम्राज्य में सूर्य कभी अस्त नहीं होता। रवि को विराम न हो पर रविवार को अंग्रेजों को आराम है और उनके सारे साम्राज्य में विश्राम है। अदालतें बंद, पाठशालाओं को तातील, डाक आदि को भी

अर्ध विश्राम ! जेल में भी छुट्टी ! बालक बालिकायें रविवार की राह देखा करते हैं जब कि स्कूल के कठिन कारावास से उन्हें निवृत्ति मिले।

रविवार का वासर। भोजनोपरांत कुटुंबियों के साथ चर्चा। हँसी मजाक ! कभी गंभीर बात। बालकों की उछल-कूद। कहीं धक्का-मुक्की। कभी कान में कथन। कभी जोर की ध्वनि। बड़े छोटे का किंचित आत्म-विस्मरण ! समानता और प्रेम की लहर ! गंभीरता की अपेक्षा तरल मनोवृत्ति की अधिकता ! इस प्रकार के वातावरण में सारे कुटुंबी बैठे हुये थे कि शशि अपनी हिन्दी पुस्तक लेकर उछलता-कूदता आया। कल उसने मृग-जल का पाठ पढ़ा था ! उसके मस्तिष्क में वह घूम रहा था। अपनी बहन से कहने लगा " दीदी ! जानती हो, मृग-जल क्या होता है ? " कमलाने कहा, " यह पुस्तिका मैंने तुझ से १० वर्ष पहले पढ़ी थी ! " शशि—" बस ! किताब में से ही जानती हो ? किताब से तो मैं भी जानता हूँ। तुमने दस वर्ष पहले पढ़ा मैंने कल पढा ! तब दोनों का ज्ञान बराबर है। तुम्हारे दस वर्ष बेकार गये ! "

हम सब हँस पड़े। कमला कुछ सकुचाई पर कहने लगी, " पर दस वर्ष पहले जाना न ! " शशि-" उससे क्या लाभ ? तुमने मृग-जल देखा है क्या ? तुम तो राजपूताना कई बार हो आई हो। बताओ देखा है मृगजल ? "कमला—" मैंने तो नहीं देखा पर इतने बड़े पिताजी हैं उन्होंने भी कहां देखा है ?" शशि—" क्यों पिताजी ! आपने भी नहीं देखा ? " " नहीं, मैंने भी नहीं देखा।" शशि—" तब आपका ज्ञान भी मेरे जितना ही है ! यह क्या ? किताबों में लिखी बात को पढ़कर ही सब ज्ञानी बन जाते हैं। स्वयं कुछ जानते ही नहीं ! "

मैं विचार मग्न हो गया कुछ जवाब देता, इतने में ही शशि

फिर बोल उठा, "पिताजी ! मैं तो मृग-जल देखना चाहता हूं। वह बड़ी अच्छी वस्तु है। जहां जल नहीं वहां जल दिखाई देता है ? वहां जाओ तो जल नहीं ! फिर दूर दिखाई देने लगता है। दूर से जल, समीप बालू और फिर अन्तर में जल के दर्शन ! मैं यह सब देखना चाहता हूँ। इस बार गर्मियों की छुट्टियों में पहाड़ों पर न चल हमें राजपूताना चलना चाहिये। क्यों दीदी ! ठीक है न ?" कमला— "बिलकुल ठीक।" मैंने कहा, "राजपूताने की गरमी ! फिर मृगजल देखने के लिये मध्यान्ह में बाहर भटकना ! वहां लाय बरसती है ! तपी बालू ! अति उष्ण वायु ! न वृक्ष, न छाया ! सारा भयंकर दृश्य ! वहां जाना है ! पहाड़ों का आराम फिर वहां याद आयगा !"

शशि, "जो कुछ हो, सब बरदाश्त करेंगे। इस बार तो गरमी में मृगजल ही दिखा दो। क्यों पिताजी ! राजपूताना ही चलेंगे न !"

"अच्छा ! तुम्हारी उत्कटता गर्मियों की छुट्टियों तक टिकी रही और बहुमत तुम्हारा रहा तो विचार किया जायगा।"

शशि उछल पड़ा ! ताली बजा दी। "इस बार राजपूताना चलेंगे, मृगजल देखेंगे। सब मेरे पक्ष में मत देंगे।"

मैं विचार प्रवाह में प्रवाहित हो गया। मृगजल देखने की बालक की कितनी उत्कट जिज्ञासा है ! संकटों की परवाह नहीं, उपयोगिता का विचार नहीं। मृगजल देखकर आखिर क्या करेगा ? मेरे और उसके ज्ञान में आज कोई फर्क नहीं है ! मृगजल देखने के अनन्तर भी जीवन में क्या परिवर्तन हो जायगा ? मृगजल तो अभाव में भाव है ! दृष्टि का भ्रम है ! जल नहीं वहां जल दिखाई देता है ! वहाँ पहुँचें तो जल

आगे चला जाता है! हमारी गति के साथ उसकी भी गति है। हमारा उसका अन्तर अनिवार्य अन्तर है। पर देखने की उत्कटता है। यह तो मृगजल अवलोकन की मृगतृष्णा ही है! उस योगी का कार्य है जिसने ईश्वर अवलोकन का प्रयत्न कर उसे पाया नहीं। अन्तर से मरीचिकावत् ईश्वर को देखा पर समीप जाते ही वह विलीन हो गया! तब योगी ने कहा—"नेति! नेति!" यह नहीं है! यहां नहीं है! "आगे दिखाई दिया। वहां पहुँचने पर फिर "नेति" की ही अनुभूति! उसने नेति में ही ईश्वर पाया।

क्या परमेश्वर दर्शन का प्रयत्न सचमुच मृगतृष्णा ही है? अन्तर से अभाव का भाव है? हमारी कल्पना सृष्टि है? नजदीक पहुँचने पर, आगे चले जाने का भास है? हमारे बाह्य-चक्षु शून्यमें, पोल में, आकाश का अवलोकन करते हैं, और हमारे अन्तर्चक्षु, निराकार निर्गुण, परमेश्वर का अवलोकन कर उसके दर्शन का आभास पाते हैं! आकाश नयनों की सृष्टि है; परमेश्वर मन की अपरिमित सीमा है! जिसका आदि नहीं अंत नहीं, उसका अवलोकन कैसा?

ईश्वर दर्शन में और मरीचिका अवलोकन में मुझे साम्यता दिखाई दी। मैं तृष्णा के पीछे दौड़ूं या व्यवहार में व्यस्त रहकर साक्षात् जल का पान करूं?

वेलोर जेल,
१९-६-४३.

११

★ काज़वा

वर्षाऋतु में कितनी विविधिता है, कितनी विचित्रता तथा कितनी अचानकता रहती है ! सूर्यास्तके पूर्व ही मैं अपने कारावास के कम्पाउन्ड में खूब तेजी से घूमता हुआ व्यायाम कर रहा हूँ। आकाश स्वच्छ दिखाई

★ जुगनू

देता है। सिर पर बादल बिलकुल दिखाई नहीं देते। आकाश की जड़ों में उनका अस्तित्व अवश्य नजर आता है। अस्तमान सूर्यकी कलाओं का अस्ताचल से उदय होनेवाले बादलों से संपर्क हो गया! पयोधरों में प्रकाश मिल गया है, पानी में आग प्रवेश कर रही है! पश्चिम का परम आकर्षणीय स्वरूप बन गया है। श्याम मेघों के खंड पर्वत का भास करवाते हैं। शुभ्र-पयोधर बर्फ पुंज का स्मरण करवाते हैं। विलक्षण आकार के कारण काले पहाड़ों पर वृक्षोंका भास होजाता है। कहीं काले पत्थरोंपर बर्फ शिलायें पड़ी हैं! कहीं हिम-प्रस्तरों पर श्याम शिलाखंडों का ढेर होगया है। नीलाकाश पर किरणों ने नारंगी रंग के पट्टे लगा दिये हैं! काले पहाड़ स्वर्ण से भरे दिखाई देते हैं। कहीं स्वर्ण-राशि खुली पड़ी है! तो कहीं सोना पत्थरों के पीछे से झांक रहा है! पश्चिम व्यापी मनोहारी दृश्य का चित्रण हो सकता है, वर्णन कठिन है! जेलकी शुष्कता में ये दृश्य जीवन दाता हैं, हर्ष के प्रवाहक हैं और प्रकृति की निगाह में हमारे बंदी हृदय का अद्यापि आदर है इसके सूचक हैं! दृश्य देखते घूमता हूँ। कभी पश्चिम की ओर पीठ है कभी पश्चिम का साक्षात्कार है। घूमकर भी पश्चिम को देख ही लेता हूँ। हर चक्कर के साथ पश्चिम की अवस्थामें परिवर्तन हो जाता है और संसार की परिवर्तनशीलता का प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता रहता है। मन में प्रसन्नता और शरीर में स्फूर्ति है। सायंकाल यह अवस्था!

रात्रि में नौ बजे अत्यंत भिन्न परिस्थिति! भ्रमण के स्थान पर जेल के बरामदे में आराम कुरसी पर मेरा एकाकी आसन है। भोजन भार से शरीर में कुछ सुस्ती है, शरीर के परमाणुओं में निद्रा ने प्रवेश प्राप्त कर लिया है और शनैः शनैः मानसिक क्षेत्रपर उसका आक्रमण हो रहा है!

सायंकाल का स्वच्छ आकाश जड़ों में दिखाई देनेवाले मेघोंसे व्याप्त होगया है। चंद्र तारोंका आभास तक नहीं है। एक रंग! श्याम वर्ण! सम अवस्था! प्रकाश का संपूर्ण अभाव! तब भी आकाश दिखाई देता है और मेरे समीप की वस्तुएं अस्पष्ट हो गई हैं; मानों सारा अन्धकार आकाश से बरस कर पृथ्वी पर आ गिरा हो। आकाश की अपेक्षा अवनि अधिक तममय होगई है। समय समय पर बिजली की हलकी सी आभा चमक कर अंबर-धरती को एक कर देती है! हलकी विद्युत से दूरी पर जनित ध्वनि, हवा में ही विलीन होजाने के कारण मेरे कानों पर पहुंचती ही नहीं। हवा भी हिल्लोल हीन है। अतः नीरव शांति का संपूर्ण साम्राज्य है। वर्षा के फव्वारे टपकते हैं। कभी फव्वारे बूंद का स्वरूप धारण कर लेते हैं मानों सोते बादलों ने करवट बदलते समय कुछ वर्षा कर दी हो। बरामदे में बैठा मैं आकाश की ओर देख रहा हूँ। विचार आगया "यह परिस्थिति भयानक है या सुंदर? सायंकाल में कितना सौंदर्य था! प्रकाश था! भिन्न रंगोंका मिश्रण था! नील आकाश था। अभी अन्धकार है! आकाश की नीलिमा का लोप होगया है। न हिम है न हेम है! न पर्वत है न तरु का भास है! आकाश में विविधता हीन समानता है। वह अवस्था मुझे सुंदर क्यों दिखाई देती थी? अभी भीषणता का भाव मनमें क्यों पैदा हो जाता है। वह स्थिति संपूर्ण थी या यह अवस्था संपूर्ण है? उत्तर की आवाज मिली, "दोनों अवस्थायें, अवलोकन भिन्नता के अनुसार भीषण-सुंदर, संपूर्ण-अपूर्ण हैं।" व्यापक निगाह में एक स्वरूप! सीमित अवलोकन में स्वरूप भिन्नता!

यदि दृश्य-विश्व की अनंत संभावनाओं का संपूर्ण भान हो जाय तो वह, सौन्दर्य का सतत् और स्थायी साक्षात्कार है। यदि समस्त संभावनाओं के अन्तः प्रवाह का बौद्धिक-दर्शन हो जाय तो वह सत्य का

निरंतर अवलोकन है। विश्व की भीषणता में, विनाश के मध्य में भी जीवन रस का श्रोत श्रवित होते ही रहता है–यदि इसका विश्वास होजाय तो विश्व का कल्याण-नृत्य, नयनों के सन्मुख सतत होता हुआ दिखाई देता रहे। भीषणता में मृदुता का पुट है! कठोरता में भी प्रेम के आकर्षण का सतत स्वरूप है! यही कारण है कि मृत्यु की महा भीषणता में भी विश्व का जीवन तथा प्रगति अबाधित है! हर स्थिति में सौंदर्य है, सत्य है और कल्याण का अंश है। पर मेरी दृष्टि इतनी व्यापक क्यों कर हो?

विशाल आकाश के अवलोकन से आंखें नीचे उतरीं। सामने कुछ दूरी पर एक बड़ा वृक्ष था। दिन में मैंने उसे देखा था अतः अभी उसे वृक्ष मानता हूँ। पर अभी साक्षात् में वह वृक्ष, वृक्ष नहीं दिखाई देता। एक भीषण काले रंग का मेघ, विलक्षण आकार में पृथ्वी और गगन के बीच टंगा प्रतीत होता है। तरु का तना दिखाई नहीं देता। डालियों, शाखायें, पत्ते सब एक रंगी होगये हैं, और एक अंधकार का पुंज बन गया है। इस अंधकार पुंज–स्वरूप तरु पर अनेक जुगनू चमक रहे हैं। काले पर्वत पर अल्प प्रकाशित अनेक दीप टिमटिमा रहे हैं। जुगनू दिखाई नहीं देता; उसका प्रकाश, उसके अस्तित्व का भान करवाता है। वृक्षपर चमकते दीपों की, बिजली के लट्टुओं की व्यवस्था में क्षण-क्षण में परिवर्तन है! कभी कोई बुझता है, कभी कोई चमकता है! कभी कभी कहीं अग्निकण हैं! कभी कहीं चिनगारी है! कभी अनेकों का सह प्रकाश है और कभी सारे ही बुझते दिखाई देते हैं! आकाश में तारे नहीं हैं। पर इस मेघ रूपधारी, त्रिशंकुवत् लटकते वृक्षपर तारों का, चेतन तारोंका, चर्चन है! कभी कोई और कभी अनेक जुगनू वृक्ष को छोड़ हवा में उड़ जाते हैं मानों आकाश में तारे चमक रहे हैं! कभी वृक्ष के

ऊपर, आकाश में चक्कर काट जाते हैं, दौड़कर जेल की दीवार से चिपकते दिखाई देते हैं ! लपक कर पृथ्वी को आलिंगन कर आकाश की ओर उछल जाते हैं ! बिना आग के चिनगारियां उड़ रही हैं और बरसते पानी में भी बुझ नहीं रही हैं ! कितना मनोहारी सौंदर्य है ! भीषणता में कितने सौंदर्य की सतत क्रीड़ा है ! मैं आकर्षित होगया। भाव बदल गये। वृक्ष और उसके चारों ओर चहल पहल करते जुगनुओं के साथ मेरी आँखें भी नाच गईं। निद्रा का आक्रमण रुक गया। शरीर की विश्चलता में भी जरा चंचलता आ गई। मन तो बंधन से भाग जुगनुओं के साथ समरस होगया !

सायंकाल का दृश्य मेरे लिये मनोहारी था। मैं उछलता था। पर यह बिचारा जुगनू वहीं छिपा पड़ा था। अभी इस समय मैं बरामदे के आश्रय में छिपा हूं और जुगनू अपनी मस्ती में मँडरा रहा है। मैं विश्व को किस के चक्षुओं से देखूं ? मेरे या जुगनू के ?

यह जुगनू क्या है ? प्राणि-शास्त्र का पूर्ण ज्ञान न होने के कारण मैं जानता नहीं कि यह जुगनू पशु है या पक्षी ! किस प्रकार इसका जन्म होता है ? कितनी इसकी आयु मर्यादा है ? कितने पंख हैं, कितने पैर ? क्या इसका आहार ? निराभिष भोजी है या आमिष् आहारी ! कितनी इसकी इंद्रियाँ हैं ? क्या इसकी निद्रा है और क्या इसके जीवन-प्रेम का स्वरूप ? यह प्रकाशमय क्या पदार्थ है ? इसमें प्रकाश ही है या उष्णता भी ! विश्व व्यवस्था में इसकी क्या उपयोगिता है ? विकासवाद के अनुसार जीवन-सृष्टि-निर्माण में कहां इसका स्थान है ? विकासवाद यदि सत्य है तो यह जुगनू मेरे पूर्वजों की श्रेणी में कोई दूर का स्थान रखता है। यदि विकासवाद त्याग भी दिया जाय तो भी

प्राणी-शास्त्र-निर्माण की तीन ही अवस्थायें हो सकती हैं। एक—सारी सृष्टि का सह निर्माण हुआ हो। दूसरी, मानव का प्रथम अवतार हुआ हो और पश्चात् अन्य प्राणियोंका सृजन ! तीसरी, प्राणी सृष्टिका प्रथम निर्माण और अंत में मानव जगत ! दूसरी अवस्था—मानव का प्रथम निर्माण और प्राणियों का पश्चात् निर्माण असंभव है। श्रेष्ठ कलाकृति के पश्चात कोई कलाकर हीन कला का निर्माण नहीं करेगा। अतः या तो जुगनू और मानव साथ पैदा हुये या जुगनू मानव से प्रथम पृथ्वीवासी बना। किसी भी हालत में उसकी सनातनता मुझसे कम नहीं। प्रत्युत यदि तीसरी अवस्था—प्राणि निर्माण के पश्चात् मानव निर्माण-सत्य है तो इस जुगनू की सनातनता, प्राचीनता मुझसे अधिक पुरानी है। प्राचीनता में आदर है, सनातनता में सत्य है तो जुगन का और मेरा सत्य समान है ! संभवतः जुगनू का सत्य अधिक प्राचीन और इस कारण अधिक सत्य हो सकता है।

फिर मैं मानव, श्रेष्ठ क्योंकर ? सनातनत या प्राचीनता को त्याग भी दिया जाय तब भी देखता हूं कि वर्तमान में भी यह जुगनू मुझसे श्रेष्ठ है। मुझे अन्धकार से भय है, यह जुगनू अंधेरे में आनंद का अनुभव करता दिखाई देता है ! मैं वर्षा को सहन नहीं कर सकता, यह बरसते पानी में क्रीड़ा कर रहा है ! मुझे आश्रय चाहिये यह आश्रय की अवहेलता करता है। आग से मैं डरता हूं, यह अपने अंक पर अग्नि लिये उछलता है। मै सूर्य का पुजारी हूं यह स्वयं सूर्यका अंश है। मैं पृथ्वी पर पड़ा मानव हूं और यह पृथ्वी, आकाश सब जगह विहार करता है। अग्नि, आप, वायु, अन्धकार सबसे निर्भय है। प्रकृति की सारी शक्तियों को इसने पराजित किया है। कितनी जरासी इसकी जान है और कितनी महान इसकी शान है ! आदर से

मेरा हृदय द्रवित होगया और इच्छा हुई की जुगनु की प्रार्थना के लिये एक स्तोत्र की रचना करूं। काव्य-देवता ने कृपा नहीं की और मन की भावना मन में ही विलीन हो गई !

जुगनु के आदर भाव से मैं इस प्रकार द्रवित था कि एक जुगनू मेरे समीप से उड़ता हुआ चला गया। मुझे प्रतीत हुआ कि मेरे आदर से आकृष्ट होकर ही जुगनू ने मेरे समीप आने की कृपा की। मैं ने उसे आहिस्ता पुकारा, "जुगनू!" कोई जबाब नहीं मिला। चमकता जुगनू क्षणभर में अन्धकार में अंतर्धान होगया ! मैं निराश होगया ! वृक्ष की ओर फिर देखने लगा। दो जुगनू मेरी ओर आते दिखाई दिये ? एक नजदीक से निकल गया, दूसरा मेरे अंक पर पड़े कुरते पर बैठ गया। मेरे आनंद का पारावार नहीं ! मैंने पुकारा, "जुगनू" प्रत्युत्तर नही ! कल्पना चमक गई। प्राचीनता का पोषक जुगनू हिन्दी को क्या समझे ! मैं ने संस्कृत में आवाज दी, "खद्योत !" 'ज्योतिरिंगण' ! कोई प्रतिक्रिया नहीं। मृतभाषा को भूल गया हो ! राज-भाषा का ज्ञान हो, मैंने पुकारा। "फायर फ्लाय !" जुगनू ने चमक दी। मैंने सोचा वह समझा। पर चमक के अलावा कोई क्रिया नहीं। विचार आया। इस भ्रान्त की भाषा समझता हो अतः मराठी में पुकारा, "काजवा !" पर वही अवस्था ! केवल चमकता है और चमक बंद कर देता है। मनमें आया, यह मेरी भाषा किस प्रकार समझे ? मानवों की सहस्रों भाषाओं में इसके अनेक नाम होंगे ? यह एक रूप अनेक नाम ! यह बिचारा जुगनू किस भाषा को समझे ? यह तो नाम से अलिप्त अपने रूपमें मस्त है। मुझे नाम रूप दो बन्धन ! जुगनू को केवल रूपका बन्धन ! मुझसे अधिक स्वतंत्रता। पर हां, यह स्वतंत्र इस जेलखाने में क्यों आगया। मैं तो अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिये यहां पड़ा

हूं। पर इसे यहाँ आने में क्या लाभ? क्या भारत व्यापी कारागृह का इसे, मानव से भी अधिक भान है और इसी कारण विशाल जेलखाने को छोड़ यह इस अल्प बंधन में आगया है? क्या मेरी सहानुभूति में यहां इसका आगमन है? क्या इस शुष्क वातावरण में मेरे मन बहलाने के लिये इसने यहां आने का कष्ट उठाया है? इसी कारण मेरे अंक में आ इसे उज्वलित किया है? कितना विशाल इसका हृदय है और कितना प्रेम-प्रवाह उसमें भरा है? जुगनू मेरे प्रेमी के स्वरूप में परिणित हो गया। उसके स्पर्श से अपने को आनंदित करने के लिये मैंने अपना कोमल कर आहिस्ते से आगे बढाया। जुगनू को पता लग गया था मालूम नहीं क्या हुआ, वह उड़ गया, चमक कर चला गया। मुझे अकेला छोड गया। जुगनू का आना, मेरा पुकारना, प्रेमीका स्वरूप बनना और मुझे त्याग जाना-सारा काल्पनिक साम्राज्य समाप्त हो गया! जुगनू अपनी मस्ती में मंडराने लगा और उसकी उपेक्षा से मुझ में मानवता का स्वाभिमान जागृत हो गया!

वह अज्ञानी मुझे क्या समझे! मेरे भावों को क्या जाने! वह कीट पतंग है! सृष्टि की निकृष्ट रचना है। मैं मानव उत्कृष्ट रचना का प्रतीक हूं। उसकी मेरी क्या समानता? क्या मैत्री? जुगनू में अनेक गुणों की विशेषता है। वह स्वयं संपूर्ण भी दिखाई देता है। उसका विकास संपूर्णता के समीप है। पर वह प्रगति से परे है! जुगनू की सनातनता स्थायी है। सैकडों वर्षोंका जुगनू और आजका जुगनू समान हैं! मानव जीवन प्रगतिशील है। वह बदलता है। अपनी जीवन व्यवस्था में परिवर्तन करता है। अपना निज का संसार निर्माण करता है। मानव की सनातनता नित्य नवीनता है। जुगनू केवल निर्माण है पर, मानव निर्माण के साथही निर्माता भी! विश्व की मूल-सृष्टि के साथ मानव-सृष्टि भी है, और

बन के साथ उपवन भी ! जुगनू का विकास सीमित है अतः वह संपूर्णता के समीप है। मानव विकास के लिये विविधता का विशालक्षेत्र पड़ा है अतः उसका विकास अपूर्ण दिखाई देता है । हे जुगनू ! तेरी सीमित संपूर्णता में तू यदि मस्त है तो मेरी असीम अपूर्णताओं में मैं मस्त हूं। जा ! तू नाच ! निश्चित हो। मैं भी निद्रा की निश्चित आराधना करूं।

दमोह जेल,
२३-७-४४.

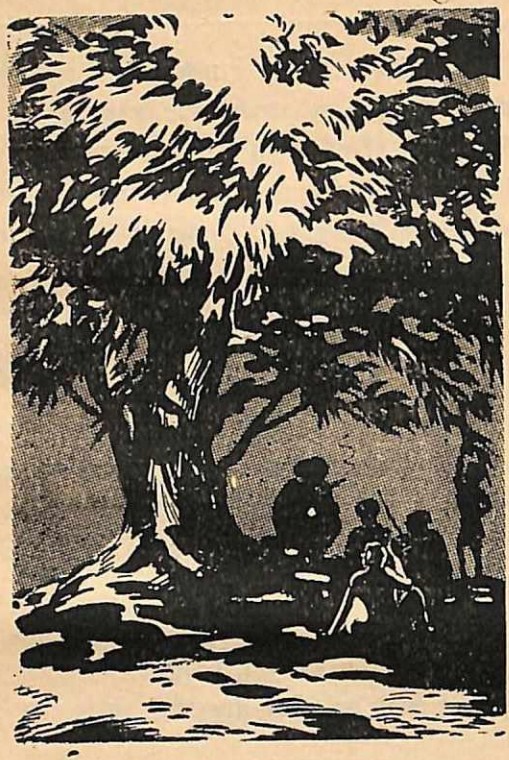

१२

आम्रवृक्ष

प्रखर ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्न का समय ! सूर्य अपने सम्पूर्ण प्रभाव से प्रभावित ! उसके प्रकाश से आँखें चौंधिया जाती हैं। इस ताप को सहन न कर पृथ्वी स्वयं गरम हो गई है। ताप से

आहत वायु भी किंकर्तव्यविमूढ दिखाई देता है। कहीं शांत है! कहीं जोर से बहकर अपने क्रोध की गरमी प्रकट करता है! कहीं पृथ्वी-कणों से संधिकर दोनों सम्मिलित रूपसे चक्राकार बनकर सूर्य पर आक्रमण कर रहे हैं। वृक्ष, पशु, पक्षी और क्या मानव-सब इस तापसे अपनी रक्षा का मार्ग खोज रहे हैं। सृष्टि के जीवनदाता सूर्य का यह जीवन-तापदायक स्वरूप प्रकृति में आश्चर्य की शांति लाये हुये है। जिधर उधर सूर्य प्रताप है और शेष दुनिया निर्जीव सी प्रतीत होती है! महान प्रभाव के सन्मुख अन्य अल्प तेज विलीन हो ही जाते हैं!

शहर से दूर मेरी छोटी सी कुटिया के लघु उद्यान के कोने में एक सुन्दर हरा भरा पल्लव पूर्ण विशाल आम्रवृक्ष है। सूर्य ताप से तप्त कतिपय पथिक शीघ्र गति से उस वृक्ष की छाया में आते दिखाई दिये! छाया में पहुंचते ही पथिकों ने अपने सिर का वस्त्र हटाया। पसीना पोंछा और मैं दूर से अनुमान कर सका कि उन्होंने आराम की साँस ली! कुटिया के भित्तिमय तथा आच्छादित आश्रय से आम्रवृक्ष के छायामय आवरण ने मुझे आकर्षित कर लिया। मन के आकर्षण ने शरीर पर विजय पाई और गरमी का क्षणिक ताप सहन करके भी मैं वहाँ पहुंचा।

वृक्षकी सघन शांत छाया है। आम्र पर्णों ने सिर झुका कर सारे सूर्य ताप को सहन कर लिया है और परिणाम स्वरूप आल्हादकारी छाया का वहाँ अस्तित्व है। छाया के आश्रय के कारण वायु भी आहत नहीं है। पृथ्वी भी शीतल है। आम्र मंजरी की मंद सुगंध ताप निवारण में सहायक है। पथिकों ने आराम पाया ही था। मेरे लिये भी वह छाया सुखदायक थी, सुहावनी थी, और विश्राम करने योग्य थी! मैं ने छाया

को देखा, पथिकों का अवलोकन किया। आँखे ऊपर उठा वृक्ष, सौन्दर्य, सघनता, रंग आदि देखने में मैं मग्न होगया। छाया के इस महान मूल्य ने वृक्ष की ओर आदर भरी निगाह से देखने के लिये मुझे प्रेरित किया! आदर ने कल्पना को जगा दिया और शरीर की शांति मानसिक शांति में मिल गई!

अभी इस छाया का कितना मूल्य है? कितनी शोभा है और कितना आकर्षण? पर रात्रि में क्या होगा! सूर्य अस्त होनेपर रात्रि के अंधकार में न वृक्ष की छाया होगी और न कोई उसके पास आश्रय के लिये आवेगा। इस समय की मूल्यवान छाया रात्रि में निर्मूल्य बन जायगी। छाया का मूल्य सूर्य ताप के अस्तित्व में है। दुनिया में हर वस्तु का मूल्य सापेक्ष है। क्या सतत मूल्यवान वस्तु जगत में कोई है ही नहीं? मल्य का सच्चा ज्ञान जीवन सफलता की कुंजी है!

मूल्य! मेरा अपना मूल्य! मेरे इस शरीर की कीमत भी तो आत्मा रूपी सूर्य के अस्तित्व में ही है! उसके अस्त में यह निर्मूल्य है! रात्रि होना निश्चित है! रात्रि की अंधकारमयी अनंत छाया में मेरा मूल्य निर्मूल्य होनेवाला है अतः जब तक सूर्य है मैं अपनी छाया दे दूं। दान परोपकार नहीं, जीवन सफलता है!

वेलोर जेल
७-४-४३

१३

जन्मदिन

आज बहन का जन्म दिन है। बत्तीस वर्ष पूरे होगये हैं। तैंतीसवें वर्ष में पदार्पण है। बहन पर जिनका स्नेह है वे सब प्रसन्न हैं। बहन का जन्म दिन आनंद पूर्वक मनाने में सहायक होने की सबकी हार्दिक अभिलाषा है। बहन के हर्षित हृदय का वर्णन करना या

उसकी थाह लेना कठिन है! कारण अनेक हैं। स्वयं के ज्ञात-अज्ञात अतीत का स्मरण! वर्तमान के स्नेहियों का चारों ओरसे भाव प्रदर्शन! भविष्य की आशा का मानसिक अवलोकन! बहन का जीवन सदा उमंग से भरा रहा है। क्रियात्मक रहा है। निर्भीक रहा है और भावी जीवन की सफलता की आशा का भी यहां निर्बंध प्रवाह रहा है।

प्रति दिन के उषःकाल की अपेक्षा आज का उषःकाल उसके लिये भिन्न है! अच्छा स्नान, नये कपड़े, पुष्प और मालाओं का सहयोग, नगरस्थ स्नेहियों की भेटें, और भाव प्रदर्शन! आशीर्वाद की झड़ी। पत्रों का आना और तारों का टपकना! अच्छा पंक्ति-भोजन! रात्रि में गायन और खेल आदि का खास कार्यक्रम! सारा दिन आनंद की लहरों से हिलोरे ले रहा था। इस हर्ष प्रदर्शन में वायु भी साथी था! पुरानी आनंद लहर को बहा ले जाता था, ताकि नई लहर वहां आ सके। गृह के सारे वातावरण में जन्मोत्सव का जीवन था। बहन अपना प्रतिदिन का गंभीर जीवन कार्य कुछ भूल गई थी। दिन चला गया। उसका पता तक न लगा! आज का दिन कुछ छोटा जान पड़ा। हमारे दुख में दिन भी बड़े हो जाते हैं! सुखमें वे भी छोटे नजर आते हैं। सूर्य की गति से हमारे दिल की गति कुछ भिन्न दिखाई देती है।

इस आनंद लोक में भी दैव मेरा दुश्मन था ही। मेरे मस्तिक में विचारधारायें दौड़ जाती थी। सारे आनंद श्रोत में व्यथा का ओघ मिल जाता था, और मैं विचार करने लगता।

"दुनिया अजीब है। यह सारा आनंद क्यों? बहन मृत्यु के समीप आरही है, वह बत्तीस वर्ष काल के समीप आई है! उसके निकट

जाने में आनंद का प्रदर्शन क्यों ? फिर जितने अधिक निकट उतना अधिक आनंद ! पचास वर्ष हुये तो सुवर्ण-जयंती और थैली अर्पण भी ! साठ वर्ष हुये तो हीरक-जयंती और यदि सौ वर्ष पूरे हो गये तो शताब्दि का असीम आनंद ! मानो तैरनेवाले की अपेक्षा डूबनेवाला अधिक सुखी है, अधिक आदरणीय है !" इस प्रकार के अनेक विचार दिनभर मेरे साथी बने रहे ! मैं सारे आनंद समारंभ में भी शरीक होते रहा। मेरा जीवन द्विधा रहा। मैं आश्चर्य करते रहा कि क्या ज्ञान से अज्ञान अधिक सुखोत्पादक है ! आनंद के इस तेजप्रवाह में अपनी व्यथा के अस्तित्व प्रदर्शन का साहस भी मैं न कर सका। और वह न करना उचित भी था। साहस के लिये भी तो औचित्य की कैद हो सकती है !

विशाल नदियों का प्रवाह भी समय पाकर धीमा हो जाता है। मूसलधार वर्षा भी शान्त हो जाती है। फिर मनुष्योंका आनंद प्रवाह एक गति से कितनी देर चले ? आनंद के सारे कार्यक्रम शयन की तैयारी में विलीन हुए। अपना दिनभर का बोझ हलका करने के हेतु मैं ने शयन के लिये प्रस्थान करती बहन से नम्रता और आहिस्ते के साथ स्मितयुक्त स्वर में कहा, " बहन ! तुम्हारा जन्मदिन आनंद से समाप्त हो रहा है। सारा दिन हर्ष से गया पर मैं उस आनंद की बहार को अमिश्र भाव से न लूट सका ! कुछ व्यथा मेरी साथी रही ! अब तुम शांति से सो जाओ और मैं विचार व्यथा में तरंगता रहूंगा। तुम्हारे आनंद का हिस्सा मैं ने लिया तो मेरी व्यथा का हिस्सा भी तुम्हें देना चाहिये ताकि दोनों की निद्रा समान हो जाय ! या तो दोनों शांति से सोयें या तुम भी विचारों के आघात का आगर बनी रहो। बहन ने प्रसन्न-चित्त कहा, "भैया ! अवश्य कहो ! मेरा सच्चा जन्मोत्सव तुम्हारी व्यथा निवारण में ही होगा।" मुझे साहस आया। शांति

मिली ! अपने सारे दिन के विचार संक्षेप में उसके सन्मुख रख दिये। बहन प्रसन्न हुई। स्मित किया। मेरी ओर देखा ! मधुर स्वर में बोली—"भैया ! दृष्टिकोण की भिन्नता ही दुनिया में प्रायः सुख दुख का कारण है। आज के सारे आनंद को मैं ने एक निगाह से देखा और तुमने दूसरी ! तुम मेरी निगाह से देखते, व्यथित न होते ! एक ही महान पर्वत को दो स्थानों से देखा जा सकता है। उसके चरण के पास खड़े होकर यदि पर्वतराज का अवलोकन करें तो गगनचुम्बी शिखरों को देख आश्चर्य और आनंद हुये बिना न रहेगा। पर यदि शिखर पर चढकर नीचे देखा जायगा तो कन्दराओं और अस्तव्यस्त पत्थरों के अलावा क्या दिखाई देगा ? कुतुबमीनार का वैभव-दर्शन भूमिपर से देखने में है, न कि उसकी चोटी पर चढ़कर अवलोकन में ! जीवन के चरणों में खडे होकर जीवन को देखो भैया ! वह उन्नत है, विशाल है ! गगनचुम्बी है ! मृत्यु जीवन का शिखर है। वहाँ पहुंचकर जीवन का अवलोकन न करो।"

"भैया ! मेरा आजका आनंद मृत्यु के सन्निकट जाने का आनंद नहीं। मृत्यु तो जन्म से ही हमारा साथी है। हमारे साथ ही जन्मा है। मुझे हर्ष इस बात में हुआ है कि जन्म के साथी मृत्यु से मैं ने बत्तीस वर्ष छीन लिये हैं और भविष्य में अधिक छीनने की आशा है। जीवन संग्रह में से बत्तीस वर्ष खोने की भावना की अपेक्षा मृत्यु मुखसे बत्तीस वर्ष खींच लेने की मेरी भावना प्रबल है। जीवन के पराजय की अपेक्षा जय की निगाह मेरे सामने है और मैं जीवन को हानि की निगाह से न देख प्राप्ति की नजर से निहारती हूँ। जब तक जीवन है तब तक प्राप्ति है ! अन्त में हानि तो है ही !"

'अच्छा भैया! यह एक निगाह हुई। अब तुम्हारी निगाह से भी निहार लिया जाय। मैं मृत्यु के समीप जा रही हूँ यह सत्य है। जीवन में तुम मानते हो कि मृत्यु सबसे भयंकर वस्तु है। उस भयंकर वस्तु का भय निकल जाना; निर्भीक, हँसते और नाचते मरना यह जीवन की सच्ची सफलता है। इसीलिये मृत्यु के जितना नज़दीक उतना उत्सव अधिक! मृत्यु के हम जितने समीप जावें उतनेही अधिक निर्भय बनें–यही मृत्यु पर विजय पाना है।'

'भैया! मेरे जन्म–दिन उत्सव में प्राप्ति–भावना की प्रबलता है। मृत्यु से निर्भयता की प्रतिमा है। प्राप्ति और निर्भयता में ही जीवन का आनंद–श्रोत है। मेरा आज का उत्सव मृत्युंजय यज्ञ है! क्यों भैया! अब सोओगे शांति से?

मैं ने सिर झुकाया। मूक सम्मति दी। बहन का आदर किया। किंचित हँसा। केवल निद्रा देवी का भक्त बनने चला गया!

वेलोर जेल
१४-४-४३